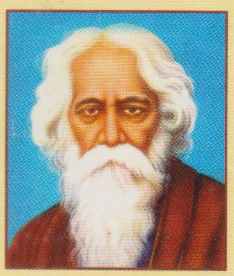
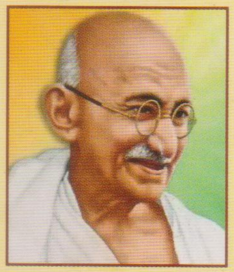
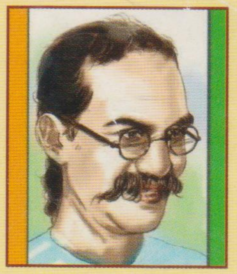
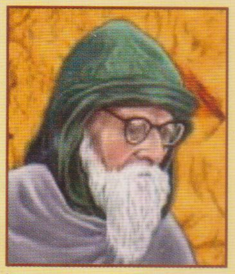
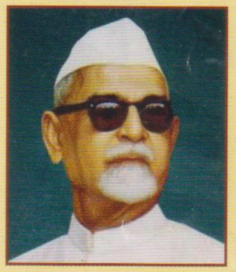
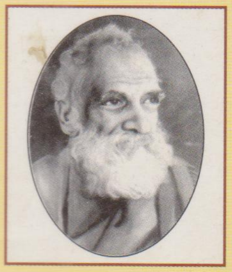
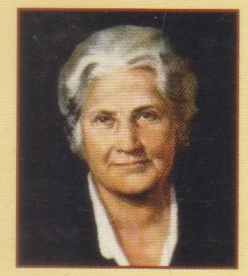
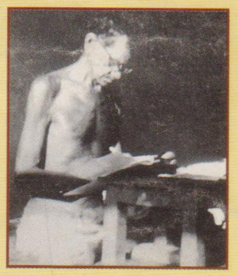
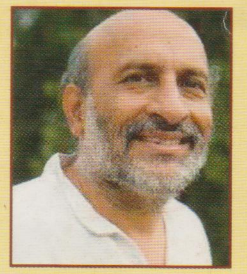
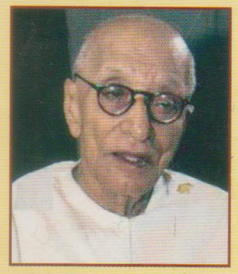
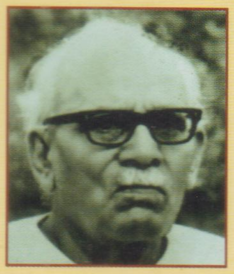
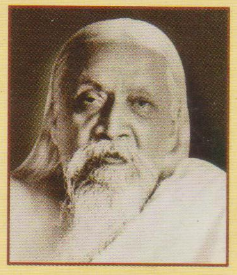
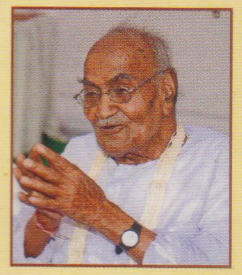
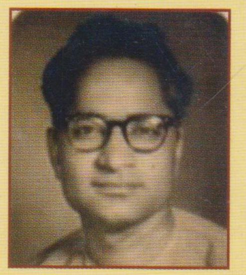
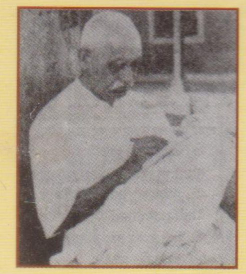
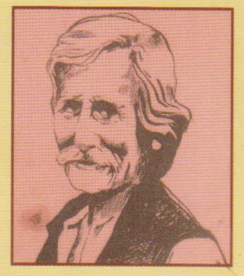
अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : ०१ पौष-माघ वि.सं.- २०७६ जनवरी २०२० पृष्ठ ६८ यह अंक पचास रुपए RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X

भारत के बाल शिक्षा शास्त्री

नूतन–वर्षाभिनंदन

श्यामावन के बाल मेहमान

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति को दिसम्बर २६ और २७, २०१६ के दो दिनों के लिए बिरले मेहमानों के स्वागत का अवसर मिला। इनके स्वागत सत्कार में नाना-नानी न्यास एवं समिति के संयोजन सचिव श्री दिनेश पुरोहित का आर्थिक सहयोग रहा। ये बिरले मेहमान श्यामावन से आये थे। अपनी टोली को लेकर **अर्चना बहुगुणा** ३० बच्चों के साथ समिति पहुंची थी। श्यामावन एक संस्था है। केदारनाथ के नीचे और गुप्त काशी के ऊपर। मंदाकनी नदी के किनारे। रुद्र प्रयाग होकर वहां जाना होता है। इन बाल मेहमानों में पांच बरस से पन्द्रह बीस बरस तक के जिज्ञासु बालक थे। कुछ बड़ी उम्र की लड़कियां छोटे बच्चों की अनुदेशिकाएं थीं। बालकों से मिलते ही पता चला था कि वे बहुत कुछ जान लेने और सीख लेने की उत्कंठा से और अदम्य लालसा से भरे हुए हैं। एक अजीब अनुभूति थी इन बच्चों से मिलना और उनके साथ दो दिन बैठना।

श्यामावन एक ऐसी संस्था है जो बालकों को सीखने का और सृजन करने का खुला आकाश देती है। समग्र शिक्षा और सुदीर्घ आयोग्य का द्वारा खोलती है। ये बालक संस्था में अपनी छोटी अवस्था में ही आ जाते है और बरसों तक रहते हैं। इस संस्था में कोई अध्यापक नहीं है। यह संस्था कोई स्कूल भी नहीं है। अगर है तो प्यार भरा एक नीड़ है। स्नेह भरा एक घोंसला है, जो बालकों को बुलाता है और पूरे ममत्व के साथ अपनी परवरिश में उनको सबकुछ जान लेने का अवसर देता है। बच्चे कुदरत की गोदी में पलते हैं।

श्यामावन की विशेषता है कि पूरा कुटुम्ब एक सुर में जीता है। सभी बच्चे तन्मय होकर सुरीली आवाज में सुर से सुर मिलाकर अच्छे गीत गाते हैं। गाना वे सब मिलकर सीखते हैं। सहजीवन ही उनका मूल आधार है। श्यामावन में आकर उन्होंने अपनी सृजन यात्रा और स्वावलम्बी शिक्षण यात्रा शुरू कर दी है। इस यात्रा की अपनी एक गति है, लय है, ताल है। सभी उसी लय ताल में निबद्ध हैं। समिति को इनका आतिथ्य इतना सुहा गया कि वे सब समिति परिवार के अंग हो गये हैं। समिति को लगा कि हिमालय ने अपनी कोई ठंढी बयार इधर भेज दी है। ❑



बुल्लेशाह

बुल्ला की जाणां मैं कोण?

बुल्ला की जाणां मैं कोण?
न मैं मोमिन विच मसीतां, न मैं विच कुफ्र दियां रीतां
न मैं पाकां विच पलीतां, न मैं अंदर वेद किताबां
न मैं रहदां भंग शराबां, न मैं रिंदां मस्त खराबां
न मैं शादी न गमनाकी, न मैं विच पलीति पाकी
न मैं आबी न मैं खाकी, न मैं आतिश न मैं पौण
बुल्ला की जाणां मैं कोण?

न मैं अरबी न लहोरी, न मैं हिंदी शहर नगौरी
न हिंदु न तुर्क पेशावरी, न मैं भेद मज़हब दा पाया
न मैं आदम हव्वा जाया, न मैं अपणा नाम कराया
अव्वल आखिर आप नूं जाणां, न कोइ दूजा होर पहचाणां
मैंथीं होर न कोई सियाणा, बुल्ला शाह खड़ा है कोण
बुल्ला की जाणां मैं कोण?



न मैं मूसा न फरौन, न मैं जागन न विच सौण
न मैं आतिश न मैं पौण, न मैं रहदां विच नादौण
न मैं बैठां न विच भौण, बुल्ला शाह खड़ा है कोण
बुल्ला की जाणां मैं कोण?

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका
वर्ष : ४६ अंक : ०१ पौष-माघ वि.सं. २०४६ जनवरी, २०२०

क्र म

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक : रमेश थानवी | कार्यकारी संपादक : प्रेम गुप्ता | प्रबंध संपादक : दिलीप शर्मा
यह अंक पचास रुपये | वार्षिक शुल्क तीन सौ पचास रुपये | संस्थागत वार्षिक शुल्क पांच सौ रुपये | मैत्री समुदाय तीन हजार रुपये

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

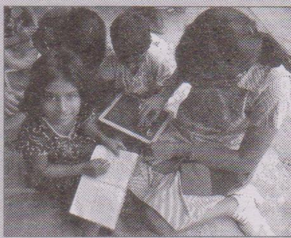
भारत में बाल शिक्षा के मनीषी

सभी पाठकों मित्रों एवं शुभचिंतकों को **नववर्ष** की बहुत-बहुत बधाई। नव वर्ष का हर नया पल हमारे सामने नयी चुनौती, नयी उमंग, नयी आशा और नये संकल्प लेकर आता है। नये साल में बालकों की बात करना अपने आप में नयी ऊर्जा भर देता है। ऐसा करते हुए हम उन बाल मनीषियों को याद कर रहे हैं जो जिन्दगी भर बचपन की पैरवी करते रहे।

पता नहीं क्यों भारत के बहुत सारे लोग यह सोचते हैं कि भारत में कोई बाल शिक्षा शास्त्री पैदा ही नहीं हुआ। लेकिन ऐसा मानना सही नहीं है। एक नजर हम भारत में ऐसे बाल-शिक्षा शास्त्रियों पर डालें, उनका अध्ययन करें तो पाएंगे कि एक लम्बी सूची हमारे सामने आ जाती है। **मां मारिया मोन्तेस्सोरी, गिजुभाई बधेका, जुगतरामभाई, काशीनाथ त्रिवेदी और सबसे ऊपर महात्मा गांधी एवं गुरुदेव** स्वयं ऐसे बाल शिक्षक हुए हैं जिन्होंने प्रेम और ममता भरी पाठशालाएं चलायीं। इन बाल शिक्षकों ने बाल मनोविज्ञान को गहराई से जाना, समझा और उनका जिया। इन्होंने बालकों में उत्साह और लग्न से सीखने की लौ लगा दी। प्यास जगा दी। उनमें साहचर्य का मंत्र फूंका, उनकी बाल पाठशालाएं उद्योग प्रधान थी। इन पाठशालाओं में बालकों को आरोग्य और स्वच्छता से जीने की शिक्षा दी जाती थी। अक्षर ज्ञान तो वे खेल ही खेल में सीख जाते थे।

मां मोन्तेस्सोरी और गिजुभाई बधेका बाल शिक्षा के ऐसे पारखी हुए जिन्होंने बालकों की आंतरिक ऊर्जा को पहचाना, परखा और मरते दम तक उनकी वकालत करते रहे। गुजरात के भावनगर में बाल मंदिर चलाने वाले और बाल शिक्षा के प्रणेता गिजुभाई तो बालकों की दुनियां में अमर हो गये। उनकी एक किताब **दिवास्वप्न** एक नवाचार है। शिक्षा एवं साहित्य का एक अनूठा सृजन।

महात्मा गांधी तो बच्चों के बड़े बैरिस्टर थे ही। देश की आजादी के आंदोलन में भी वे बच्चों को भूले नहीं थे। बच्चों के लिए उनके पास खूब समय था। वे बच्चों की खैर-खबर लेना नहीं भूलते थे। उनकी बीमारी में देखभाल वे स्वयं करते थे, चाहे उनके घावों पर मरहम पट्टी करना हो या उन्हें नीम के पानी से धोना हो। गांधीजी बच्चों को आजाद और निडर देखना चाहते थे। बालकों के साथ रहना उन्हें सुख देता था। उन्होंने बच्चों की नई दुनिया का सपना अपनी आंखों में सजोया था। उन्होंने **बुनियादी तालीम** की नींव रखी और **बालपोथी** की रचना भी स्वयं की।



जुगतराम भाई ने आदिवासी इलाके में रहने वाले बच्चों के साथ काम किया। उन्हें अंधेरे से निकालकर उजाला दिखाया। जुगतराम भाई कोई एक क्षेत्र में बंध जाने वाले नहीं थे। उन्होंने खादी, खेती, स्वच्छता, शिक्षा, साहित्य, सांस्कृतिक प्रवृत्तियां- जिस भी विषय को छुआ, बेमिसाल काम किया। आपने एक अनूठी बालबाड़ी की नींव रखी। जिसमें बालकों को जीवन यापन की महत्वपूर्ण शिक्षा दी जाती थी। इनका पूरा जीवन बालकों को समर्पित था। इसके साथ ही उन्होंने बेड़छी में व्यस्कों को खादी कार्यकर्ता बनाने का बहुत बड़ा काम अपने जीवनकाल में किया। खादी के ऐसे मंत्र के साथ-साथ स्वराज का मंत्र भी यहां गूंजता था। गुरुदेव टैगोर के कई गीतों को उन्होंने गुजराती में उतारा।

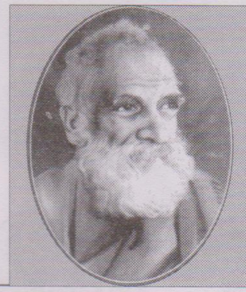
बाल शिक्षा मनीषी **काशीनाथ त्रिवेदी** बालकों की दुनिया को एक अलग नजर से देखते थे। उनकी दृष्टि में **बालकों की दुनिया** बालकों जैसी है। उनमें मिठास है, उल्लास है, सहृदयता है, सरलता, कोमलता, मानवता और बंधुता है। ऊंच-नीच, अपना-पराया, गरीब-अमीर, लड़का-लड़की का भेद वे नहीं जानते । वे बड़ों से प्रेम, आदर और सत्कार चाहते हैं। वे चाहते हैं कि बड़े कथनी और करनी में अंतर न करें चूंकि वे स्वयं सत्यनिष्ठ हैं।

हमारे साथ बालकों का रिश्ता बड़ा ही निराला है। उनके साथ रहकर, जी कर हमें उनके दिव्य रूप के दर्शन होते हैं। बचपन आनन्द है जहां बुराई जैसी कोई चीज नहीं है। अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, लालच का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं है बस ये सब तो जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है परिवार, समाज और राज से सीखने लगता है। सीखना और सीखते जाना उसके जीवन की सतत प्रक्रिया है। सीखना उसका परम सुख है।

आज हमारे सामने बालकों को बालक बने रहने देने की एक बड़ी चुनौती है। बालकों को जल्दी बड़ा करने की होड़ में बचपन खो गया है। उनके बचपन को जिंदा रखना आज की जरूरत है। बालकों के सामने हम क्या परोस रहे हैं, प्रतिस्पर्धा की दौड़ में, होड़ में बालक का बचपन छीन रहे हैं। इन सारे प्रश्नों के उत्तर खोजने की आकुलता और व्याकुलता ही हमें नये समय की चुनौतियों से लड़ने की क्षमता देती है। ऐसे आनन्द के पल उनकी अपनी मिल्कियत थी, वहां अनुशासन को कोई जगह नहीं थी। अमन, आजादी और आनंद उनकी निजी जरूरत थी। हमारी शालाओं ने वही सब छीन लिया।



आइये, नये साल में बच्चों में ऐसी ताकत पैदा करें कि वे जीवन में आनन्द के गीत रच सकें और गा सकें। ❑ **-प्रेम गुप्ता**



महात्मा भगवानदीन

एक थे महात्मा भगवानदीन

भारत के बाल-शिक्षा शास्त्रियों में महात्मा भगवानदीन का नाम सबसे पहले याद आता है।

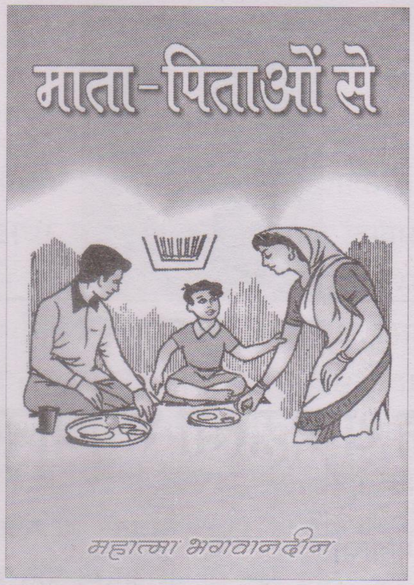
उनका जन्म ११ मई, १८८४ ग्राम अतरौली, अलीगढ़ में हुआ था। अपनी जवानी में उन्होंने रेलमंत्रालय की नौकरी की मगर जल्दी ही छोड़कर १९११ में मेरठ में ११ मई को ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल की स्थापना की। १९१८ में गुरुकुल से मुक्त होकर राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े। महात्मा गांधी के सिद्धांतों और खासतौर से अहिंसात्मक आंदोलन में उनकी अटूट आस्था थी। महात्मा भगवानदीन जन्म से जैन थे और अहिंसा परमोधर्म का मूलमंत्र उन्होंने बचपन में ही अपना लिया था। १९२० में उन्होंने असहयोग आश्रम की स्थापना की। १९२१ में वे तत्कालीन मध्यप्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष बने। १९२३ में नागपुर में वे झंडा-सत्याग्रह के कर्णधार थे। बाद में वे पंडित सुन्दरलाल जी के साथ इलाहाबाद में निवास करने लगे और वहां से विश्ववाणी एवं नया हिन्द नाम की पत्रिकाओं के संपादन में सहयोगी बने। १९४७ में नागपुर जा बसे और फिर अंत तक वहीं रहे। १९५१ में वे जैन जगत मासिक अपने क्रांतिकारी विचारों से सहयोग करते रहे।

इस बीच वे कई बार जेल गये। अपनी इस लोकोन्मुखी जीवन यात्रा में महात्मा भगवानदीन देश की आजादी के प्रति तो सजग रहे ही, लेकिन साथ ही वे बालकों की शिक्षा के प्रति भी समर्पित रहे। उनका विश्वास था कि शिक्षा के मार्फत देश में सच्ची अहिंसात्मक आजादी की नींव रखी जा सकती है। उनका यह भी विश्वास था कि बालकों की पहली शाला बालक का अपना घर होता है और बालक की मां बालक की पहली शिक्षक होती है। इसी दृष्टि से माता-पिताओं के लिए एक पुस्तक लिख डाली।



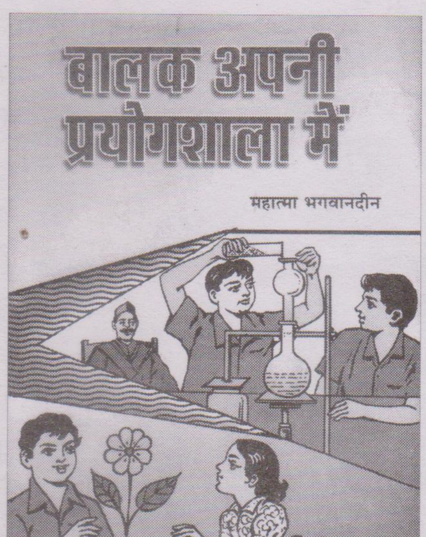
माता-पिताओं के लिए लिखी गयी किताब उस हर घर के लिए जहां छोटे बच्चे बड़े हो रहे हैं - गीता, कुरान जैसी किताब हो सकती है। इसको किताब कहना भी ठीक नहीं होगा सिर्फ ४८ पृष्ठ कि कितबिया ही है यह। इस कितबिया में माता-पिताओं के लिए हिदायतों से भरा पहला अध्याय है- **बर्ताव कैसे किया जाये?** इस अध्याय में ८२ हिदायतें हैं और फिर दूसरे अध्याय में बाल व्यवहार से संबंधित हिदायतों का एक अलग विभाग है जो ८३ से १८१ तक हैं और फिर अगले विभाग में १८२ से २०० तक ऐसी हिदायतें हैं जो बालकों के स्वास्थ्य, व्यवहार एवं संस्कारों से संबंध रखती है। अगला एक विभाग है- पढ़ाया कैसे जाये ? इस विभाग में बाल शिक्षण संबंधी ७३ सूत्र दिये गये हैं। ये छोटी सी पुस्तिका बालकों के लालन-पालन और शिक्षण संबंधी एक गुटका है

जो हर परिवार के लिए आवश्यक रूप से एवं अनिवार्य रूप से संग्रहणीय है।



महात्मा भगवानदीन की अगली पुस्तिका है - **बालक सीखता कैसे है ?** यह पुस्तिका भी सिर्फ ७५ पृष्ठ में बालकों के शिक्षण एवं संस्कारपूर्ण लालन-पालन संबंधी ११ मनोवैज्ञानिक घटनाओं का वर्णन है। विद्यार्थी ने हुक्के की लत छुड़ा दी, गिनती कैसे सिखायी गयी, बच्चों यो बदलता है, आलोचना नहीं प्यार कीजिये, बालक की इच्छा को काम में लगाइये, बालक सीखता कैसे है, हर बात से सबक, आश्रम के बालक गाली से दूर, छड़ी का उपयोग और शरारत यों मिटी शीर्षकों से ११ मनोवैज्ञानिक घटनाओं का वर्णन किया गया है। यह पुस्तिका भी हर घर के लिए एक अनिवार्य, संग्रहणीय गुटका साबित हो सकती है। आवश्यता सिर्फ यही है कि माता-पिता सजग हो जावें और अपनी जिम्मेदारी को ठीक से निभाने के लिए शिक्षित होने को तत्पर रहें।

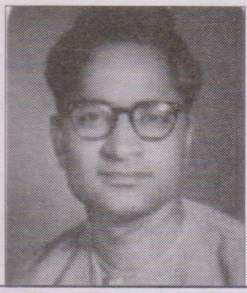
महात्मा भगवानदीन की अगली पुस्तक का नाम है-**बालक अपनी प्रयोगशाला में** यह पुस्तिका नहीं है बल्कि एक सुचिंतित और सुभाषित ग्रंथ है। २२० पृष्ठ का।



आज जहां चारों ओर यह चर्चा है कि बालकों के लिए उपयुक्त वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण हो, उन्हें विकास का पूरा मौका दिया जाए, उनकी भावनाओं को समझकर उनके बौद्धिक स्तर को ऊंचा उठाया जाय, वहां प्रश्न यह है कि बालकों से पहले माता-पिता और अध्यापकों को इस दिशा में प्रवीण कैसे बनाया जाय। खेद की बात है कि जिन अध्यापकों के हाथों में हम राष्ट्र की भावी पीढ़ी की बागडोर सौंपते हैं, वे स्वयं इतने अभावग्रस्त और सुविधाओं से वंचित होते हैं कि बालकों की ओर देखने का अवकाश ही नहीं पाते।

प्रस्तुत ग्रंथ इस दिशा में शालीन प्रयास है। जो भी अध्यापक इसे हाथ में लेकर पढ़ना शुरू करेगा, वह अगर असल में अध्यापक है, तो पूरा पढ़े बिना छोड़ नहीं सकता। अनेक उदाहरणों द्वारा यह बताने की कोशिश की गयी है कि बालक की हर प्रवृत्ति और वृत्ति को बारीकी से समझे बिना पढ़ाना बालक पर अन्याय है। बालक स्वयं विज्ञान होता है। उसकी हर क्रिया एक प्रयोग, एक परीक्षण होता है। क्षणभर में वह कुछ-का-कुछ हो जाता है। किसी एक प्रक्रिया में या प्रयोग में असफल दिखाई देने वाला बालक दूसरी क्रिया में एकदम प्रवीण भी साबित हो सकता है। वह जन्म से ही प्रयोग शुरू कर देता है। जरूरत सिर्फ उसको गहराई से देखने, उसमें रस लेने, उसको प्रोत्साहित करने की है। और यह काम वही ठीक-ठीक कर सकता है, जिसके मन में बालक से भी सीखने की भावना हो और जिसकी आंखों में बालक सर्वोपरि हो।

ऐसी क्रांतिकारी पुस्तक लिखने वाले महात्मा भगवानदीन ने एक संयासी का जीवन ही जिया और देश की सेवा करते रहे। स्वावलंबन, अमन, आजादी और बालकों के लिए अनंत वात्सल्य उनके जीवन का मूलमंत्र था। वे चाहते थे कि देश के सभी माता-पिता बाल वत्सल होकर बालकों को सच्ची शिक्षा की ओर प्रवृत्त करें और देश के बच्चों के मन में देशभक्ति और मानवता के प्रति करुणा के भाव भरे। वे जीवन भर समाज के लिए प्रेम और वात्सल्य बांटते रहे। महात्मा भगवानदीन न केवल बाल शिक्षाशास्त्री थे, बल्कि सच्चे मनीषी थे। शिक्षा मनीषी। ❑ रथा.



शिवरतन थानवी

मोन्तेस्सोरी-जीवन और शिक्षा-दर्शन

दुनिया में बालकों की पैरवी करने वालों की सूची में पहला नाम मां मोन्तेस्सोरी का नक्षत्र की तरह चमकता है। इटली में जन्मी मोन्तेस्सोरी ने भारत की भूमि पर एक अनूठा आंदोलन आरंभ किया था। उनके बाल-दर्शन को आधार बनाकर देश में कई बालशालाएं खुल गई थी। यह 'मोन्तेस्सोरी पद्धति' स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व पर आधारित थी। इसके केन्द्र में बालक प्रमुख था, शाला नहीं। वात्सल्य प्रमुख था, शिक्षण नहीं। आनंद प्रमुख था, अनुशासन नहीं। सं. ❑

प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र या डिग्री प्राप्त कर लेने से किसी शिक्षक की व्यावसायिक शिक्षा पूरी नहीं हो जाती है। शिक्षा-प्रबन्धकों ने और शिक्षकों ने यह भ्रम पाल रखा है कि एक बार एस.टी.सी. या बी.एड. कर लेने मात्र से कोई शिक्षक योग्य शिक्षक बन जाता है। वास्तविकता यह है कि बिना किसी प्रशिक्षण के भी साधारण से साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति पढ़ाने की पूरी योग्यता रखता है। दो-चार कक्षा पढ़ा हुआ व्यक्ति भी जानता है कि किसी को प्रारंभिक शिक्षा देनी हो तो कैसे दे और क्या दे। यह वह पढ़ता-पढ़ता स्वत: सीखता है। कोई सिखाता नहीं है। उसे उसका अनुभव सिखाता है। बड़े-बड़े शिक्षाविदों, शिक्षाधिकारियों, शिक्षा-प्रबन्धकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों को यह साधारण-सी बात समझने में अभी देर लगेगी, लेकिन इसे समझना बहुत जरूरी है।

समझना है यह कि कोई भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति जब भी जहां भी है वह पढ़ाने की योग्यता रखता है। किसी प्रशिक्षण की जरा भी जरूरत नहीं, किसी भी स्तर पर शिक्षण प्रारंभ करने से पूर्व। दूसरी बात यह समझनी है कि जो पढ़ाता है, चाहे प्रशिक्षित हो कर या अप्रशिक्षित होते हुए भी, उसे अपनी व्यावसायिक योग्यता को बढ़ाने के लिए हर समय हर स्तर पर नया ज्ञान प्राप्त करने को सदैव उत्सुक और उद्यत रहना चाहिए। औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का उपाय करते रहना चाहिए। अनौपचारिक प्रशिक्षण स्वयं के स्तर पर भी, जब जैसी सुविधा हो, जारी रह सकता है और बाहरी स्रोतों से भी यह यथासुविधा अल्पकालीन, दीर्घकालीन या पत्राचार से प्राप्त किया जा सकता है।

आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक स्वयं स्वेच्छा से प्रयत्नशील रहे तथा सरकार या शिक्षा-प्रबंधक इसमें उसकी मदद करे। सरकार या शिक्षा-प्रबन्धक पाठ्यक्रमों का आयोजन भी करे और यह भी देखे कि हर विद्यालय में शिक्षकोपयोगी साहित्य हमने कितना और किस स्तरीयता का दिया है। सरकार में शिक्षा से जुड़े जितने भी लोग कार्यरत हैं चाहे वे शिक्षाधिकारी हों या शिक्षा-सचिव और शिक्षा-मंत्री, उनका यह कर्तव्य है कि वे शिक्षा-साहित्य की श्रेष्ठता समझने में पारंगतता प्राप्त करें। शिक्षा-र

साहित्य में शिक्षकोपयोगी साहित्य जितना मूल्यवान है उतना ही मूल्यवान बालोपयोगी और किशोरोपयोगी साहित्य भी है। इनके विषय में हम जितना कुछ जानते हैं उतने से संतुष्ट हो कर न बैठें। जानकार लोगों की संगत करके और स्वाध्याय द्वारा आपने आपको समयानुकूल बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे तो हम शिक्षा-तंत्र का सही संचालन कभी नहीं कर सकेंगे। हम चाहे किसी भी कितने ही ऊंचे-नीचे पद पर क्यों न हो, हम में यह योग्यता तो होनी ही चाहिए कि हम ग्रहणशील बनें, विनय भाव से नए से नया सीखते रहने को उद्यत रहें। नया ज्ञान प्राप्त करने की हमारी तैयारी और इच्छा ही हमें हमारे पद के योग्य बनाएगी और हमें अच्छे शिक्षकों और अच्छे शिक्षा-संस्थानों के गुणों की परख करना सिखाएगी।

शिक्षा संबंधी श्रेष्ठ पुस्तकों पर विशेष ध्यान देने वाले कुछ ही प्रकाशक नज़र आएंगे आपको। आप उन्हें पहचानिए और उनका उपयोग कीजिए। मेरी नज़र में अभी तीन प्रकाशक ऐसे हैं जिन्हें सही शिक्षा-दृष्टि की पहचान भी है और शिक्षकोपयोगी श्रेष्ठ लेखकों-पुस्तकों में भी जिनकी रुचि है। वे हैं-**ग्रंथशिल्पी** (दिल्ली), **एकलव्य** (भोपाल) और **मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति** (राजलदेसर)। एकलव्य की पुस्तक **'मेरी ग्रामीण शाला की डायरी'-जूलिया वेबर गार्डन** पठनीय है। **जॉन होल्ट** और **ए.एस.नील** की कालजयी कृतियों के अलावा कई अच्छी शिक्षकोपयोगी व बाल-किशोर पुस्तकों का प्रकाशन भी **एकलव्य** ने किया है। **ग्रंथशिल्पी** के प्रकाशनों में **पाओलो फ्रेरे, कृष्णकुमार, अनिल सद्‌गोपाल, जॉर्ज डेनीसन,**



जोनाथोल कोजोल, मूनीस रजा, सिल्विया एश्टन वार्नर, अंतोन मकारेंको, मारीया मोन्तेस्सोरी, रोहित धनकर आदि के शिक्षा पर कई मूल्यवान ग्रंथ हैं।

आज हम लेते हैं **'मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति'**, **राजलदेसर का प्रकाशन 'मारीया मोन्तेस्सोरी-जीवनी और शिक्षा-दर्शन'**, जिसके लेखक हैं **संजीव मिश्र।** हर पृष्ठ पर रंगीच चित्रों सहित इसका भव्य मुद्रण किया है सांखला प्रिन्टर्स, बीकानेर ने और अभूतपूर्व तकनीक से युक्त कलात्मक आवरण और साज-सज्जा से सजाया है, प्रसिद्ध कलाकार और कला-शिक्षक श्री रामकिशन अडिग ने, मूल्य है १५० रु.। हिन्दी पाठकों-शिक्षकों को यह भी **वैद** की अत्यन्त मूल्यवान सेवा है। पहले उन्होंने **गिजुभाई** लिया था, अब **मोन्तेस्सोरी** को लिया है। पहली पुस्तक ली है, **मोन्तेस्सोरी** का **जीवन और शिक्षा-दर्शन।** समिति के ऋषितुल्य सचिव **श्री कुन्दमल वैद** वर्षों से शिक्षा-जगत् को **गिजुभाई** का साहित्य दे रहे हैं। अब वे **मोन्तेस्सोरी** का साहित्य पाठकों-शिक्षकों को देने का संकल्प ले रहे हैं। उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है- 'एक विनम्र पहल हमने की थी मां **मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति** खोल कर। इस समिति ने सबसे पहले **गिजुभाई बधेका** के सम्पूर्ण बाल शिक्षा-दर्शन की १७ पुस्तकों का प्रकाशन किया था। **गिजुभाई** हमारे कहीं - ज्यादा करीब थे। उनकी रचनाएं भी पिछले तमाम बरसों में हमें अनुप्राणित करती रही थीं। हम उनके ऋणी रहे हैं। उनकी १७ पुस्तकों का हिन्दी में सामान्य-सी कीमत पर प्रकाशन थोड़ा-सा कर्जा उतार देने का सिर्फ एक प्रयास मात्र था। अब हम **मारीया मोन्तेस्सोरी** की सभी महत्वपूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन का काम हाथ में ले रहे हैं।'

श्री कुन्दनमल वैद लगभग ६० वर्ष पहले स्वयं **श्री भामरा** जैसे **मोन्तेस्सोरी विशेषज्ञ** से **मोन्तेस्सोरी शिक्षा पद्धति** का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके थे। उन्हें पता है कि **मारीया मोन्तेस्सोरी** पूरी दुनिया में बालक-बालिकाओं के बचपन के लिए एक आशा बनकर उभरी थीं। उन्होंने **श्री वैद** जैसे दुनिया के लाखों लोगों का नजरिया बदल दिया था। दुनिया भर के तमाम शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान उस अनन्त

वत्सला मां के चिर ऋणी हो गए थे। श्री **वैद** ने अनुभव किया कि **मारीया मोन्तेस्सोरी** के जीवन और शिक्षा-दर्शन को समझने के लिए अब तक कोई भी सुचिन्तित एवं सुलिखित पुस्तक हिन्दी में उपलब्ध ही नहीं है। उन्होंने **श्री संजीव मिश्र** को इस कार्य के लिए उपयुक्त पाया। **श्री मिश्र** मूलत: कवि थे, कलाप्रेमी थे, साहित्यानुरागी थे और लेखक व पत्रकार भी थे। शिक्षा में भी उनकी गहरी रुचि थी। **कुंदमलजी** ने **मोन्तेस्सोरी** पर ग्रंथ रचना का काम सृजनधर्मी लेखक **संजीव जी** को सौंपा। **संजीव जी** ने **मोन्तेस्सोरी** की तमाम कृतियों का निचोड़ निकालकर परम मनोयोग से बहुत सुन्दर रूप में यह कार्य संपन्न किया।

मारीया मोन्तेस्सोरी का जन्म ३१ अगस्त, १८७० के दिन इटली में हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में इटली तो क्या पूरे यूरोप में कोई औरत डॉक्टर होने की कल्पना नहीं कर सकती थी। औरतों का काम था घर सम्हालना। आधुनिकता की थोड़ी शुरुआत हुई तो बहुत हुआ तो औरतों को अध्यापन की छूट मिली। **मारीया मोन्तेस्सोरी** की स्कूली पढ़ाई पूरी हुई तो उसने फैसला किया कि वह कुछ भी करेगी पर टीचर नहीं बनेगी। **मारीया** को तब टीचर का काम एकदम बेकार लगता था। वह चाहती थी कि डॉक्टर बने। लेकिन घर में, समाज में, सब जगह उसके इस निर्णय का विरोध हुआ। भले हो, वह दृढ़-निश्चय थी। पूरे इटली में वह पहली लड़की थी जिसे मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिला। यह प्रवेश भी उन्हें अपनी जिद और सत्याग्रह के फलस्वरूप मिला था। पिता इतने नाराज हुए कि उससे बोलना छोड़ दिया। कदम-कदम पर उसे संघर्ष करना पड़ा और अन्तत: वह डॉक्टर बन गई। और नियति का विचित्र खेल देखो कि एक भिखारिन के बच्चे को रंग-बिरंगे कागजों के टुकड़ों से खेलते हुए अद्‌भुत आनन्द में मग्न देखा तो उस बच्चे की निश्छलता ने **मारीया** का जीवन ही बदल दिया। टीचर का जो काम उसे बेकार लगता था, वही काम उसे इतना स्वर्गिक आनन्द दे गया कि वह डॉक्टर तो बनी किन्तु मन बच्चों की खुशियों का खजाना खोजने की तरफ मुड़ गया। पहले बाल-श्रमिकों की मुक्ति का अभियान चलाया और फिर धीरे-धीरे उनकी आनन्दमयी शिक्षा के अभियान में जुट गईं। संसार में बच्चों की सर्वश्रेष्ठ टीचर बन गईं।



कक्षा में प्रवेश करते ही शिक्षक का जिन बच्चों से सामना होता है, उनमें कमजोर बच्चों की समस्या उसे सबसे अधिक परेशान करती थी। **मोन्तेस्सोरी** ने इसी समस्या के लिए ऐसे-ऐसे साधनों और सिद्धान्तों की खोज की, जिनके सहारे प्रारंभिक कक्षाओं के विद्यार्थियों की शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता और गति से अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी। **मोन्तेस्सोरी शिक्षण पद्धति** और **मोन्तेस्सोरी शिक्षण सामग्री** का उपयोग करने वाले विद्यालय खुलने लग गए और धड़ाधड़ उनकी संख्या बढ़ती चली गई।

मोनतेस्सोरी का शिक्षा-दर्शन यह है कि बाल-मन को समझो, भरपूर स्नेह दो और उसे कोई ऐसी रंग-बिरंगी वस्तुएं दो, जिनको छू कर, देखकर, हिला-डुला कर, उन पर काम कर सके और अपने मस्तिष्क का भी उपयोग कर सके। बच्चों को ऐसी शिक्षण-सामग्री दो, जो उनकी शारीरिक-मानसिक प्रवृत्तियों को सक्रिय कर सके, उनकी इन्द्रियों के विकास में सहायक हो सके। ध्यान दें हम, समझें हम इनके सिद्धान्तों को, तो हमारा शिक्षण कार्य और अधिक प्रभावकारी दिशाएं ग्रहण कर सकता है।

इनके सिद्धान्त के अनुसार एक शिशु से वयस्क होने की प्रक्रिया में जिन पूर्ण परिवर्तनों के दौर से मानव गुजरता है वह 'संवेदनशील काल' होता है। हरेक ऐसे काल के दौरान बालक के व्यक्तित्व में किन्हीं विशेष गुणों-अवगुणों का समावेश होता जाता है, जो अन्तत: उसके वयस्क व्यक्तित्व के अंग बनते जाते

हैं। हर 'संवेदनशील काल' में किन्हीं विशेष कार्यों की ओर बच्चे की सहज रुचि होती है। अत: अगर बच्चे की उम्र के इस काल को ध्यान में रख कर तैयार किया जाए, परिवेश उसे दिया जाए, तो वह उसमें रुचिपूर्वक भाग लेगा और विकास करेगा। शिक्षक या अभिभावक को प्रोत्साहन, दण्ड या भय से यहां काम नहीं लेना है। इनका काम बालक को केवल सही परिवेश देना और उस परिवेश में स्वतंत्र गतिविधि की छूट देना भर रहेगा।

उनके इस सिद्धांत को सामान्यतया विश्व-भर के शिक्षाशास्त्री और मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। इस पुस्तक में **संजीव** कहते हैं कि 'एक मुक्त, संभावनाशील और सक्षम व्यक्तित्व के विकास का आधारभूत काल जन्म से छह वर्ष तक की अवस्था ही है और इसको लेकर **मारीया मोन्तेस्सोरी** के सिद्धांत का महत्व निर्विवाद है।' बड़े बच्चों में यह प्रक्रिया इतनी नैसर्गिक नहीं होती, जितनी छह साल तक के बच्चों में। लेकिन यह ज्ञान हर शिक्षक के लिए अनमोल है।

मोन्तेस्सोरी स्कूल – मोन्तेस्सोरी शिक्षण पद्धति को अपनाने वाले स्कूल का परिवेश छह साल तक के बच्चों की आवश्यकताओं-अपेक्षाओं के अनुसार होता है। विद्यालय में चारों ओर ऐसी सामग्री और सजावट होती है, जो इस शिक्षण पद्धति की अपेक्षाओ के अनुकूल होती है। वहां अध्यापक नहीं, हर गतिविधि के केन्द्र में बच्चा होता है। ऐसे स्कूल का नक्शा, फर्नीचर, शिक्षण-सामग्री आदि से लेकर दीवारों का रंग, ब्लैक बोर्ड की ऊंचाई, टॉयलेट में कमोड और वाशबेसिन का आकार और ऊंचाई, झूले, खिड़की-दरवाजे आदि सब-कुछ ऐसे होते हैं कि जिनका छोटा बच्चा बिना बड़ों की मदद के उपयोग कर सके और खुद को या किसी और बच्चे को अनजाने में चोट न पहुंचाए। ऐसी स्कूलों में पाठ्यक्रम और शिक्षकों का तैयार किया हुआ कार्यक्रम ज्यों-का-त्यों लागू नहीं होता बल्कि हर बच्चे की क्षमता व रुचि के अनुसार उसके विकास पर नजर रखी जाती है। शिक्षक परोक्ष रूप से नियंत्रित दिशा देता रहता है।

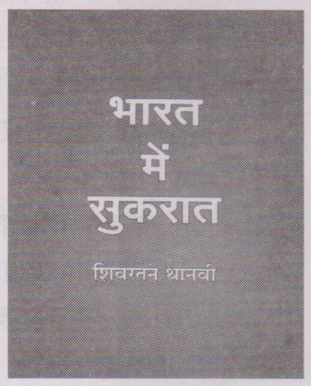


प्रचार, प्रसिद्धि और मान्यता– जब लोगों को पता चलता उनके इस नए प्रयोग और पद्धति की सफलता का, तो **रोम** के **सान लोरेन्जो** की बस्ती में घटित इस घटना को देखने दुनिया भर के लोग आने लगे। अनेक अध्यापकों और संस्थाओं ने उनकी पद्धति और सिद्धान्तों को समझा और अनेक देशों में अनेक जगहों पर उनकी विधि से शिक्षण के केन्द्रों की स्थापना होने लगी। अद्‌भुत तीव्रता से प्रचार हुआ, प्रसिद्धि मिली और विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई। '**इंटरनेशनल मोन्तेस्सोरी कांग्रेस**' की स्थापना हुई (१९२५) और **हेलसिंकी, नीस, एम्सटर्डम, रोम, ऑक्सफोर्ड, कोपनहेगन, एडिनबरा** आदि कई स्थानों पर इसके अधिवेशन हुए, जिनकी अध्यक्षता खुद **मोन्तेस्सोरी** ने की। चीन और भारत में उन्होंने बहुत समय बिताया, स्थान-स्थान पर प्रशिक्षण दिए। चेन्नई से कश्मीर तक उन्होंने सैकड़ों शिक्षक प्रशिक्षित किए। इन स्कूलों के बारे में अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में छपे। दो-तीन साल में ही कई पुस्तकें अध्यापकों, समाजशास्त्रियों और शिक्षाविदों ने लिखीं। स्कूल वालों ने देखा कि इस प्रणाली में बंधन से नहीं, स्वतंत्रता से अनुशासन का जन्म हो रहा था।

मोन्तेस्सोरी की पद्धति उनसे पूर्व के शिक्षाविदों **हॉब्स, रूसो, पेस्तालोजी** व **फ्रोबेल** से भिन्न थी। स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व पर इनका खास जोर था जो इनके पूर्ववर्ती शिक्षाविदों की परम्परा के प्रभाव का रूप हो सकता है, किन्तु उनकी प्रमुख कार्यपद्धति के मूल में मुख्य प्रेरणा तीन चिकित्सकों की थी। ये चिकित्सक थे-**परेरा, ईटार्ड** तथा **सेग्वें।** इन तीनों ने गूंगे-बहरों तथा मंदबुद्धि लोगों को सिखाने के प्रयोग किए थे।

मोन्तेस्सोरी की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। अमरीका में '**मोन्तेस्सोरी सोसायटी**' बन गई, जिसके संस्थापक और अध्यक्ष बने टेलिफोन के आविष्कारक **अलेक्जेंडर ग्राहम बैल** तथा सोसायटी की सचिव बनीं अमरीकी राष्ट्रपति की पुत्री **मागरेट विल्सन।** और वे अमरीका पहुंचीं तो मेहमान बनीं बल्ब समेत सैकड़ों वस्तुओं के आविष्कारक **टोमस अल्वा एडिसन** की। वे भारत भी आईं। चीन भी गईं। अमरीका, यूरोप, भारत और चीन समेत अनेक देशों में उन्होंने व्याख्यान दिए और शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया। **श्री कुन्दमल वैद** के **मोन्तेस्सोरी पद्धति** के गुरु श्री **भामरा** ने भी स्वयं **मोन्तेस्सोरी** से प्रशिक्षण लिया था। **मोन्तेस्सोरी** की पहली पुस्तक '**द मैथड ऑव् साइन्टिफिक पेडेगजी ऐज एप्लाइड टू इन्फैण्ट एजूकेशन एण्ड द चिल्ड्रन्स हाउसेज**' प्रकाशित हुई। दुनिया भर में इसका स्वागत हुआ। अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद छपा। पूरे विश्व से सैकड़ों चिट्ठियां इनके पास आने लगीं, जिनमें प्रशंसा भी होती थी और जिज्ञासा भी होती थी। इनकी शिक्षण पद्धति एक आंदोलन बन कर पूरी दुनिया में छा गई। ध्यान देने की बात है कि **मोन्तेस्सोरी** कोई प्रशिक्षित शिक्षाविद् नहीं थी। मात्र मंदबुद्धि बच्चों के संदर्भ में उन्होंने शिक्षा-विधि का सामान्य परिचयात्मक अध्ययन किया था। मौलिक चिन्तन, सूझ-बूझ और गहरी निष्ठा के कारण बच्चों के सीखने की प्रक्रिया के बारे में इनकी खोज एकदम नई और अनूठी थी। इनकी विशेष चर्चित पुस्तकें हैं-'**सीक्रेट ऑव् चाइल्डहुड**' तथा '**द आब्जर्वेंट माइन्ड**'। ८१ वर्ष की अवस्था में ८ मई, १९५२ के दिन हॉलैण्ड में उनका निधन हो गया। दुनिया के समस्त शिक्षा-प्रेमियों के हृदय में उन्होंने जो स्थान बनाया है वह अमर रहेगा।❑

वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर द्वारा प्रकाशित
शिवरतन जी की पुस्तक
'भारत में सुकरात' से साभार
पुस्तक की पृष्ठ संख्या १६८
पुस्तक का मूल्य : २४०/- रुपये
वाग्देवी प्रकाशन, शिवबाड़ी रोड,
बीकानेर-३३४००३



यह अंक

दुनिया में बालकों की हिमायत करने वाले एवं बालकों की पैरवी करने वाले कई बाल-शिक्षा शास्त्री हुए हैं। लेकिन नये भारत के शिक्षा उद्योग में सहसा सक्रिय हुए पूंजीपति लोग पता नहीं क्यों ऐसा मानते हैं कि इस देश में बाल-वत्सल शिक्षा मनीषियों की संख्या न के बराबर रही है।

हम अनौपचारिका के इस बाल शिक्षाशास्त्री विशेषांक में भारत के पुण्यश्लोकी मनीषी शिक्षा चिंतकों को याद कर रहे हैं जिनके नाम लेते हुए भी गौरव महसूस होता है। उनमें महात्मा भगवानदीन, मॉरिया मोन्तेस्सोरी, गिजुभाई, बापू, विनोबा भावे, काशीनाथ त्रिवेदी, जाकिर हुसैन, ताराबेन मोडक, जुगतराम भाई, बंशीधरजी, एवं बंधुजी, डेविड ऑसबरॉ आदि प्रमुख हैं।

इनके अलावा भी भारत में बाल-शास्त्रियों की एक लम्बी सूची बन सकती है। जे.कृष्णमूर्ति, बबल भाई मेहता, बावजी चतरसिंह जी, विष्णु चिंचालकर, मनुभाई पंचोली 'दर्शक', विष्णु शर्मा, राजगोपालाचार्य, काका कालेलकर, आर्यनायकम, रविशंकर महाराज, आदि जाने कितने तपस्वी मनीषी लोग।

इस अंक को प्रकाशित करने का हमारा उद्देश्य यह भी है कि आज शिक्षा स्कूल केन्द्रित हो गयी है। जबकि इन शिक्षा शास्त्रियों ने बालकों की आजादी और बाल प्रेम को ही बाल शिक्षा के केन्द्र में रखा। इस अंक में अधिसंख्य लेख अनौपचारिका के पिछले अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं। नूतन वर्ष में यह पुरातन लेखों का संकलन है। सायास एवं सौद्देश्य। ❑ सं.



गिजुभाई बधेका

एक थे गिजुभाई

भावनगर गुजरात में दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर की स्थापना करने वाले गिजभाई बधेका पेशे से वकील थे, मगर थोड़े ही दिन बाद बालकों के वकील हो गये थे। बाल मन पर किसी तरह का आघात या अत्याचार उनको गवारा नहीं था। वे मूंछों वाली मां थे। अनंत वात्सल्य और ममता को मन में समेटे। उनकी शाला में परीक्षा नहीं थी। सजा नहीं थी। सीखने का आनंद ही आनंद। प्रस्तुत हैं उनके चिंतन से कुछ चमकते हुए मोती। सं. ❑

सात्विक सिद्धि

''अपने बच्चों को तो सब कोई चाहते ही हैं। बच्चों पर प्राण देना एक प्रकार की तपस्या ही है। उन्नति का यह एक सोपान है। किन्तु इससे भी आगे बढ़कर सबके बच्चों को प्यार करने में बच्चों का और हमारा, दोनों का कल्याण है। जैसे-जैसे दूसरों के बालकों के प्रति हमारे दिल में प्रेम बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे हम अन्दर से विशाल बनने लगते हैं। संसार के बालकों में अपने बालकों को मिला देने की शक्ति एक ऊंची और सात्विक सिद्धि है।''

बालक और संत

''बच्चों की तुलना प्राय: संतों से की जाती है और यह उचित भी है। जो सरलता, सहजता, निरभिमानिता और निष्कपटता बच्चों में है, वही संतों में भी पाई जाती है। जो चीज साधुता के कारण संतों में है, संसार की हवा न लगने के कारण वही बालकों में भी है। बालक संत हैं; दुनिया उन्हें असंत बनाती है।''

खानगी शिक्षक

अपना बड़प्पन दिखाने के लिए हम खानगी शिक्षक कभी न रक्खें।

अपना ऐश्वर्य जताने के लिए हम खानगी शिक्षक कभी न रक्खें।

बराबरी की फैशन के मोह में पड़कर भी कभी खानगी शिक्षक न रक्खें।

शिक्षक को शिक्षक और चपरासी को चपरासी समझ कर किसी को हम खानगी शिक्षक न रक्खें।

शिक्षक को शिक्षक का शिक्षक और अपना मंत्री का मंत्री समझ कर कभी न रक्खें।

हां, लेकिन अपने बालकों को पढ़ाने के एक मात्र काम के लिए खानगी शिक्षक रखने जरूरी हों, तो जरूर रक्खें।

बालकों को खानगी शिक्षक की सचमुच जरूरत हो, तो जरूर खानगी शिक्षक रक्खें।

घर की शिक्षा से बालकों को लाभ पहुचने की आशा हो, तो खानगी शिक्षक रक्खें।

मौजूदा मदरसों की पढ़ाई से अपने बालकों को बचाने की इच्छा स आप खानगी शिक्षक रखना चाहें, तो जरूर रक्खें। हम शिक्षक और शिक्षा का महत्व भली-भांति समझते हों और बालकों की सच्ची कीमत आंक सकते हों, तो जरूर खानगी शिक्षक रक्खें।

मगर....?

पड़ौसी के आंगन से बालक के रोने की आवाज आई। उठकर देखा तो भाई साहब लड़के को मार-पीट कर मदरसे ले जाने की कोशिश कर रहे थे।

मैंने पूछा- भैया, नाहक क्यों इसे इतना पीट रहे हो? बेचारा कहीं मर न जाय!

जवाब मिला- तो साहब, मैं क्या करूं? हर रोज यही तो तमाशा होता है। इधर मदरसे का वक्त होता है, और इधर यह अड़ जाता है!

– आखिर कोई वजह भी तो होगी? मदरसे से इतनी हिचक क्यों?

– हिचक क्या बताऊं, साहब! मास्टर तो बेचारे बहुत ही भले हैं। लेकिन मारे लाड़ के लड़का बेहद बिगड़ गया है। इसकी मां ने इसे सिर पर चढ़ा रक्खा है। बस, सारा दिन खिलाना, पिलाना, पहनाना, ओढ़ाना और अपने इशारों पर नचाना- और इन नवाब साहब के इशारों पर नाचना। फिर भला यह क्यों किसी की परवाह करने लगे? मां को छोड़ने का दिल ही नहीं होता।

मैंने सोचा, लड़के सामने ज्यादा बातचीत करना ठीक न होगा; इसलिए मैं चुप रहा। उन्होंने तड़ातड़ दो चार तमाचे जड़े, हाथ पकड़ा और घसीटकर उसे मदरसे ले चले। मैं भी उनके साथ हो लिया।

मदरसे से पहुंचकर लड़के को मास्टर के सुपुर्द कर दिया। मास्टर ने भी समयोचित गंभीरता और कड़ेपन के साथ उसे अपने कब्जे में ले लिया।

उन्होंने छुटकारे की एक सांस ली, और सहज मुस्कुराते हुए बाहर निकले। घर आकर मैंने उनसे कहा- लेकिन मारने से फायदा क्या?



–मगर मदरसे भेजना तो जरूरी है न? अपने मन से तो वह इधर का पैर उधर भी नहीं रखता। आखिर तो बनिये का बेटा है; चोरी करके तो पेट न भरेगा? ब्राह्मण की तरह भीख भी तो नहीं मांग सकेगा।

–लेकिन भैया, थोड़ी दया रखनी चाहिए।

– साहब दया तो ऐसी चीज है कि डाकिन को भी खा जाती है। आज की बात थोड़े ही है। महीनों से लल्लो-पत्तो करता आ रहा हूं-लेकिन सुनता कौन है?

– मगर मारने से तो बालक बेहया बनता है।

– नहीं साहब, बेहया काहे बनता है। अरे, हम भी तो पिट-पिटाकर ही इतने बड़े हुए हैं। वह तो मार खा-खाकर मजबूत बन गया है। छुटपन में हम भी इसी तरह मचला करते थे, लेकिन साहब, जब एक दिन लालाजी ने हरी दतौन की सोटी से हमारी पूजा कर दी, तो अकल ठिकाने आ गई।

– मगर मदरसे जाकर भी वह पढ़ने से दिल न लगाये तो?

– नहीं क्यों लगायेगा? मास्टर को आप जानते नहीं हैं! वहां घर थोड़े ही है, साहब। पराई मां ही कान छेद सकती है। वहां कोई सेठानी थोड़े ही बैठी है, जो लल्ला को पुचकारेगी। वहां तो बिल्ली के सामने चूहे की तरह दबकर रहना पड़ता है।

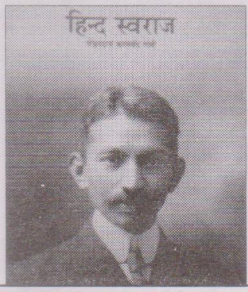
– तो आप उसे फुसलाकर और समझाकर ले जाया कीजिये न?

– फुसलाकर? बस कीजिये साहब। आप उसे किसी कदर कम न समझें। बिगड़कर धूल हो गया है। अगर कहा सुन लिया करे, तो न कहने की जरूरत पड़े, न मारने की। पेट के बेटे को पीटने में मजा तो आता नहीं! काश, उसकी मां यह समझती होती। सिवा हां में हां मिलाने के और मैं क्या कर सकता था? शिक्षक लाल पीली आंखे दिखाकर लड़कों को सुधारा चाहते हैं, और ऐसे-ऐसे पिता उन्हें ठोक-पीटकर उनका भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहते हैं! लड़कों के हितैषी तो सभी हैं।

मगर......?

मैं खिन्न होकर घर लौट आया?

मगर......?❑



महात्मा गांधी

शिक्षा

हिन्द स्वराज बापू के जीवन दर्शन का एक जीता-जागता दस्तावेज है। सौ बरस से भी पहले लिखी गई यह किताब आज भी प्रासंगिक है। एक-एक वाक्य मशाल लिये हमें रास्ता दिखाने वाला है। पाठक जानते हैं कि बापू ने एक ही बैठक में एक पूरी किताब लिख डाली थी। किताब प्रश्न और उत्तर की शैली में लिखी गई है। इसी किताब में एक अध्याय शिक्षा पर भी है। यह अध्याय आज की शिक्षा पर न केवल एक टिप्पणी है बल्कि पूरे विश्व के लिए एक शिक्षा दृष्टि हमें देता है। बिना एक भी शब्द इधर-उधर किये शिक्षा पर लिखा गया यह अध्याय हम जस का तस प्रकाशित कर रहे हैं। सं. ❑

पाठक : आपने इतना सारा कहा, परन्तु उसमें कहीं भी शिक्षा-तालीम की जरूरत तो बताई ही नहीं। हम शिक्षा की कमी की हमेशा शिकायत करते रहते हैं। लाजिमी तालीम देने का आंदोलन हम सारे देश में देखते हैं। महाराजा गायकवाड़ ने (अपने राज्य में) लाजिमी शिक्षा शुरू की है। उसकी ओर सबका ध्यान गया है। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। यह सारी कोशिश क्या बेकार ही समझनी चाहिए?

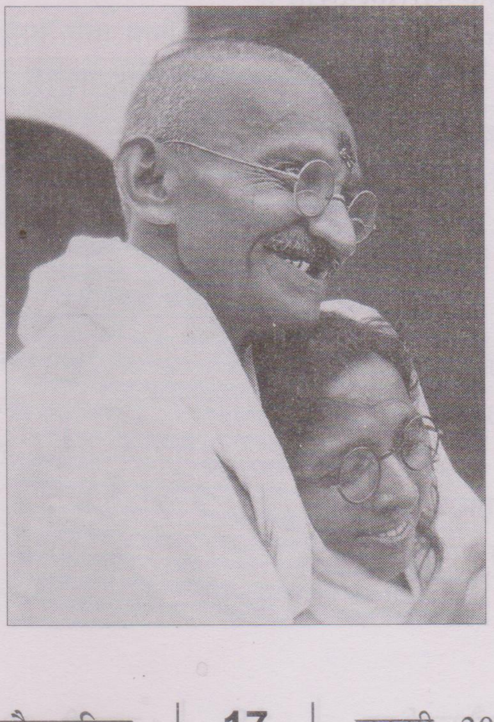
संपादक : अगर हम अपनी सभ्यता को सबसे अच्छी मानते हैं, तब तो मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ेगा कि वह कोशिश ज्यादातर बेकार ही है। महाराजा साहब और हमारे दूसरे धुरन्धर नेता सबको तालीम देने की जो कोशिश कर रहे हैं, उनमें उनका हेतु निर्मल है। इसलिए उन्हें धन्यवाद ही देना चाहिए। लेकिन उनके हेतु का जो नतीजा आने की संभावना है, उसे हम छिपा नहीं सकते।

शिक्षा : तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अक्षरज्ञान ही हो, तो वह तो एक साधन जैसी ही हुई है। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र से चीर-फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सकता है और वही शस्त्र किसी की जान लेने के लिए भी काम में लाया जा सकता है। अक्षर-ज्ञान भी ऐसा ही है। बहुत-से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह बात अगर ठीक है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर-ज्ञान से दुनिया को फायदे के बदले नुकसान ही हुआ है।

शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान ही होता है। लोगों को लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी या प्राथमिक-प्रायमरी-शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारी से खुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौर पर दुनियावी ज्ञान है। अपने मां-बाप के साथ कैसे बरतना, अपनी स्त्री के साथ कैसे बरतना, बच्चों से कैसे पेश आना, जिस देहात में वह बसा हुआ है वहां उसकी चाल-ढाल कैसी होनी चाहिए, इन सबका उसे काफी ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और उनका पालन करता है। लेकिन वह अपने दस्तखत करना नहीं जानता। इस

आदमी को आप अक्षर-ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुख में आप कौन-सी बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोंपड़ी या उसकी हालत के बारे में आप उसके मन में असंतोष पैदा करना चाहते हैं? ऐसा करना हो तो भी उसे अक्षर-ज्ञान देने की जरूरत नहीं है। पश्चिम के असर के नीचे आकर हमने यह बात चलायी है कि लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। लेकिन उसके बारे में हम आगे-पीछे की बात सोचते ही नहीं।

अब ऊंची शिक्षा को लें। मैं भूगोल-विद्या सीखा, खगोल-विद्या (आकाश के तारों की विद्या) सीखा, बीजगणित (एलजब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित (ज्यॉमेट्री) का ज्ञान भी मैंने हासिल किया, लेकिन उससे क्या? उससे मैंने अपना कौन-सा भला किया? अपने आसपास के लोगों का क्या भला किया? किस मकसद से मैंने वह ज्ञान हासिल किया? उससे मुझे क्या फायदा हुआ? एक अंग्रेज विद्वान(हक्सली) ने शिक्षा के बारे में यों कहा है: 'उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके बस में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियां उसके बस में हैं, जिसके मन की भावनाएं बिलकुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित (तालीमशुदा) माना जायेगा, क्योंकि वह कुदरत के कानून के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।' अगर यही सच्ची शिक्षा हो तो मैं कसम खाकर कहूंगा कि ऊपर जो शास्त्र मैंने गिनाये हैं उनका उपयोग मेरे शरीर या मेरी इन्द्रियों को बस में करने के लिए मुझे



नहीं करना पड़ा। इसलिए प्रायमरी-प्राथमिक शिक्षा को लीजिए या ऊंची शिक्षा को लीजिए, उसका उपयोग मुख्य बात में नहीं होता। उससे हम मनुष्य नहीं बनते- उससे हम अपना कर्त्तव्य नहीं जान सकते।

पाठक : अगर ऐसा ही है, तो मैं आपसे एक सवाल करूंगा। आप ये जो सारी बातें कह रहे हैं, वह किसकी बदौलत कह रहे हैं? अगर आपने अक्षर-ज्ञान और ऊंची शिक्षा नहीं पाई होती, तो ये सब बातें आप मुझे कैसे समझा पाते?

संपादक : आपने अच्छी सुनाई। लेकिन आपके सवाल का मेरा जवाब भी सीधा ही है। अगर मैंने ऊंची या नीची शिक्षा नहीं पाई होती, तो मैं नहीं मानता कि मैं निकम्मा आदमी हो जाता। अब ये बातें कहकर मैं उपयोगी बनने की इच्छा रखता हूं। ऐसा करते हुए जो कुछ मैंने पढ़ा उसे मैं काम में लाता हूं; और उसका उपयोग, अगर वह उपयोग हो तो, मैं अपने करोड़ों भाइयों के लिए नहीं कर सकता, सिर्फ आप जैसे पढ़े-लिखों के लिए ही कर सकता हूं। इससे भी मेरी ही बात का समर्थन होता है। मैं और आप दोनों गलत शिक्षा के पंजे में फंस गये थे। उसमें से मैं अपने को मुक्त हुआ मानता हूं। अब वह अनुभव मैं आपको देता हूं और उसे देते समय ली गई शिक्षा का उपयोग करके उसमें रही सड़न मैं आपको दिखाता हूं।

इसके सिवा, आपने जो बात मुझे सुनाई उसमें आप गलती खा गये, क्योंकि मैंने अक्षर-ज्ञान को (हर हालत में) बुरा नहीं कहा है। मैंने तो इतना ही कहा है कि उस ज्ञान की हमें मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। वह हमारी कामधेनु नहीं है। वह अपनी जगह पर शोभा दे सकता है और वह जगह यह है : जब मैंने और आपने अपनी इन्द्रियों को बस में कर लिया हो, जब हमने नीति की नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर-ज्ञान पाने की इच्छा हो,

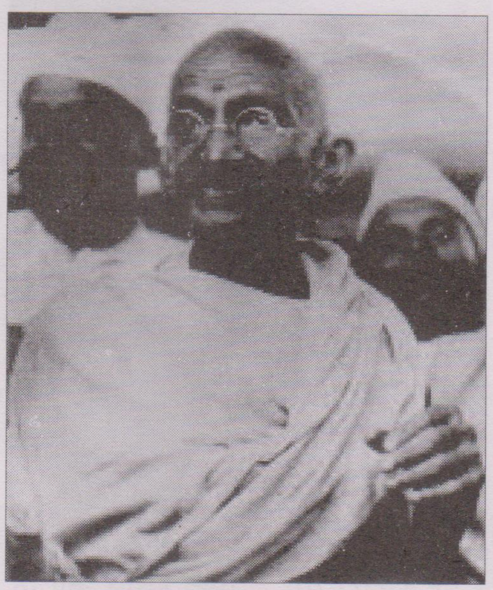
तो उसे पाकर हम अच्छा उपयोग कर सकते हैं। वह शिक्षा आभूषण के रूप में अच्छी लग सकती है। लेकिन अक्षर-ज्ञान का अगर आभूषण के तौर पर ही उपयोग हो, तो ऐसी शिक्षा को लाजिमी करने की हमें जरूरत नहीं। हमारे पुराने स्कूल ही काफी हैं। वहां नीति को पहला स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उस पर हम जो इमारत खड़ी करेंगे वह टिक सकेगी।

पाठक : तब क्या मेरा यह समझना ठीक है कि आप स्वराज के लिए अंग्रेजी शिक्षा का कोई उपयोग नहीं मानते?

संपादक : मेरा जवाब 'हां' ओर 'नहीं' दोनों हैं। करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकॉले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह कितने दुख की बात है कि हम स्वराज की बात भी पराई भाषा में करते हैं।

जिस शिक्षा को अंग्रेजों ने ठुकरा दिया है वह हमारा सिंगार बनती है, यह जानने लायक है। उन्हीं के विद्वान कहते रहते हैं कि उसमें यह अच्छा नहीं है, वह अच्छा नहीं है। वे जिसे भूल-से गये हैं, उसी से हम अपने अज्ञान के कारण चिपके रहते हैं उनमें अपनी-अपनी भाषा की उन्नति करने की कोशिश चल रही है। वेल्स इंग्लैंड का एक छोटा-सा परगना है; उसकी भाषा धूल जैसी नगण्य है। ऐसी भाषा का अब जीर्णोद्धार हो रहा है।

वेल्स के बच्चे वेल्श भाषा में ही बोलें, ऐसी कोशिश वहां चल रही है। इसमें इंग्लैंड के खजांची लॉयड जॉर्ज बड़ा हिस्सा लेते हैं। और हमारी दशा कैसी है? हम एक-दूसरे को पत्र लिखते हैं तब गलत अंग्रेजी में लिखते हैं। एक साधारण एम.ए. पास आदमी भी ऐसी गलत अंग्रेजी से बचा नहीं होता।



हमारे अच्छे से अच्छे विचार प्रकट करने का जरिया है अंग्रेजी; हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में चलता है। अगर ऐसा लंबे अरसे तक चला, तो मेरा मानना है कि आने वाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप हमारी आत्मा को लगेगा।

आपको समझना चाहिए कि अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दंभ, राग, जुल्म बगैरा बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोगों ने प्रजा को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। अब अगर हम अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोग उसके लिए कुछ करते हैं, तो उसका हम पर जो कर्ज चढ़ा हुआ है उसका कुछ हिस्सा ही अदा करते हैं।

यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इंसाफ पाना हो, तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना चाहिए! बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकता! दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए! यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेजों का दोष निकालूं या अपना? हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।

लेकिन मैंने आपसे कहा कि मेरा जवाब 'हां' और 'ना' दोनों हैं। 'हां' कैसे सो मैंने आपको समझाया।

अब 'ना' कैसे यह बताता हूं। हम सभ्यता के रोग में ऐसे फंस गये हैं कि अंग्रेजी शिक्षा बिलकुल लिए बिना अपना काम चला सकें ऐसा समय अब नहीं रहा। जिसने वह शिक्षा पाई है, वह उसका अच्छा उपयोग करे। अंग्रेजों के साथ के व्यवहार में, ऐसे हिन्दुस्तानियों के साथ के व्यवहार में जिनकी भाषा हम समझ न सकते हों और अंग्रेज खुद अपनी सभ्यता से कैसे परेशान हो गये हैं यह समझने के लिए अंग्रेजी का उपयोग किया जाये। जो लोग अंग्रेजी

पढ़े हुए हैं उनकी संतानों को पहले तो नीति सिखानी चाहिए, उनकी मातृभाषा सिखानी चाहिए और हिन्दुस्तान की एक दूसरी भाषा सिखानी चाहिए। बालक जब पुख्ता (पक्की) उम्र के हो जायें तब भले ही वे अंग्रेजी शिक्षा पायें, और वह भी उसे मिटाने के इरादे से, न कि उसके जरिये पैसे कमाने के इरादे से। ऐसा करते हुए भी हमें यह सोचना होगा कि अंग्रेजी में क्या सीखना चाहिए और क्या नहीं सीखना चाहिए। कौन से शास्त्र पढ़ने चाहिए, यह भी हमें सोचना होगा। थोड़ा विचार करने से ही हमारी समझ में आ जायेगा कि अगर अंग्रेजी डिग्री लेना हम बंद कर दें, तो अंग्रेज हाकिम चौकेंगे।

पाठक : तब कैसी शिक्षा दी जाये?

संपादक : उसका जवाब ऊपर कुछ हद तक आ गया है। फिर भी इस सवाल पर हम और विचार करें। मुझे तो लगता है कि हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल-शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिए- इसके क्या मानी है, इसे ज्यादा समझाने का यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें काम की हैं, उनका हमें अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू-मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, हिन्दुस्तानियों को इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार में अंग्रेजी को निकाल सकेंगे।

हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल-शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिए- इसके क्या मानी है, इसे ज्यादा समझाने का यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें काम की हैं, उनका हमें अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सारे हिन्दुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू-मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिन्दुस्तानियों को इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है।

और यह सब किसके लिए जरूरी है? हम जो गुलाम बन गये हैं उनके लिए। हमारी गुलामी की वजह से देश की प्रजा गुलाम बनी है। अगर हम गुलामी से छूट जायें, तो प्रजा तो छूट ही जायेगी।

पाठक : आपने जो धर्म की शिक्षा की बात कही वह बड़ी कठिन है।

संपादक : फिर भी उसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हिन्दुस्तान कभी नास्तिक नहीं बनेगा। हिन्दुस्तान की भूमि में नास्तिक फल-फूल नहीं सकते। बेशक, यह काम मुश्किल है। धर्म की शिक्षा का खयाल करते ही सिर चकराने लगता है। धर्म के आचार्य दंभी और स्वार्थी मालूम होते हैं। उनके पास पहुंच हमें नम्र भाव से उन्हें समझाना होगा। उसकी कुंजी मुल्लों, दस्तूरों और ब्राह्मणों के हाथ में है। लेकिन उनमें अगर सद्बुद्धि पैदा न हो, तो अंग्रेजी शिक्षा के कारण हममें जो जोश पैदा हुआ है उसका उपयोग करके हम लोगों को नीति की शिक्षा दे सकते हैं। यह कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। हिन्दुस्तानी सागर के किनारे पर ही मैल जमा है। उस मैल से जो गंदे हो गये हैं उन्हें साफ होना है। हम लोग ऐसे ही हैं और खुद ही बहुत साफ हो सकते हैं। मेरी यह टीका करोड़ों लोगों के बारे में नहीं है। हिन्दुस्तान को असली रास्ते पर लाने के लिए हमें ही असली रास्ते पर आना होगा। बाकी करोड़ों लोग तो असली रास्ते पर ही हैं। उसमें सुधार, बिगाड़, 'उन्नति अवनति समय के अनुसार होते ही रहेंगे। पश्चिम की सभ्यता को निकाल बाहर करने की ही हमें कोशिश करनी चाहिए। दूसरा सब अपने-आप ठीक हो जायेगा। ❑



इब्ने इंशा

यह बच्चा कैसा बच्चा है

यह बच्चा कैसा बच्चा है

यह बच्चा काला काला सा
यह काला सा मटियाला सा
यह बच्चा भूखा भूखा सा
यह बच्चा सूखा सूखा सा
यह बच्चा किसका बच्चा है
यह बच्चा कैसा बच्चा है
जो रेत पे तन्हा बैठा है

ना उसके पेट में रोटी है
ना उसके तन पर कपड़ा है
ना उसके सर पर टोपी है
ना उसके पैर में जूता है
ना उसके पास खिलौना है
कोई भालू है कोई घोड़ा है
ना उसका जी बहलाने को
कोई लोरी है कोई झूला है

ना उसकी जेब में धेला है
ना उसके हाथ में पैसा है
ना उसके अम्मी अब्बू हैं
ना उसकी आपा खाला है

यह सारे जग में तन्हा है
यह बच्चा कैसा बच्चा है

यह सहरा कैसा सहरा है
ना इस सहरा में बादल है
ना इस सहरा में बरखा है
ना इस सहरा में बोली है
ना इस सहरा में खोशा है
ना इस सहरा में सब्जा है
ना इस सहरा में साया है

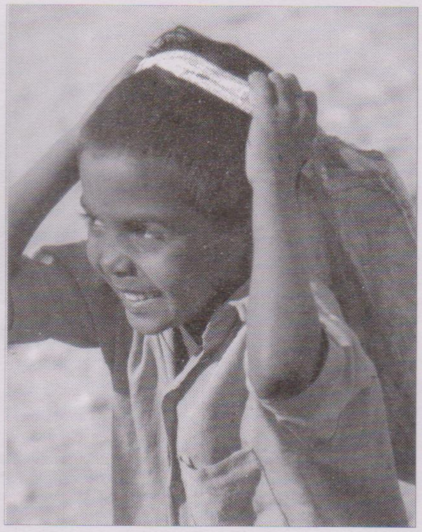
यह सहरा भूख का सहरा है
यह सहरा मौत का सहरा है
यह बच्चा कैसे बैठा है
यह बच्चा कब से बैठा है
यह बच्चा क्या कुछ पूछता है
यह बच्चा क्या कुछ कहता है
यह दुनियां कैसी दुनियां है
यह दुनियां किसकी दुनियां है
इस दुनियां के कुछ टुकड़ों में
कहीं फूल खिले कहीं सब्जा है
कहीं बादल घिर घिर आते हैं

कहीं चश्मा है कहीं दरिया है
कहीं ऊंचे महल अटारियां हैं
कहीं महफिल है कहीं मेला है
कहीं कपड़ों के बाजार सजे
यह रेशम है यह दीबा है
यहीं गल्ले अम्बार लगे
सब गेहूं, धान मुहय्या हैं
कहीं दौलत के सन्दूक भरे
हां तांबा, सोना, रूपा है
तुम जो मांगो सो हाजिर है
तुम जो चाहो सो मिलता है

इस भूख के दुख की दुनिया में
यह कैसा सुख का सपना है?
वह किस धरती के टुकड़े हैं?
यह किस दुनिया का हिस्सा है?

हम जिस आदम के बेटे हैं
यह उस आदम का बेटा है
यह आदम एक ही आदम है
वह गोरा है या काला है
यह धरती एक ही धरती है
यह दुनियां एक ही दुनियां है
सब इक दाता के बन्दे हैं
सब बन्दों का इक दाता है
कुछ पूरब पच्छिम फर्क नहीं
इस धरती पर हक सबका है

यह तन्हा बच्चा बेचारा
यह बच्चा जो यहां बैठा है
इस बच्चे की कहीं भूख मिटे
क्या मुश्किल है हो सकता है
इस बच्चे को कहीं दूध मिले



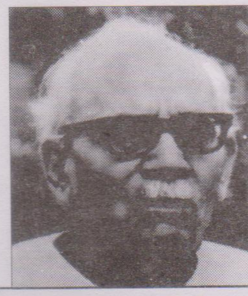
हां दूध यहां बहुतेरा है
इस बच्चे का कोई तन ढांके
क्या कपड़ों का यहां तोटा है?
इस बच्चे को कोई गोद में ले
इन्सान जो अब तक जिन्दा है

फिर देखें कैसा बच्चा है
यह कितना प्यारा बच्चा है

इस जग में जब कुछ रब का है
जो रब का है, वह सब का है
सब अपने हैं कोई गैर नहीं
हर चीज में सबका साझा है
जो बढ़ता है, जो उगता है
वह दाना है, या मेवा है
जो कपड़ा है, जो कम्बल है
जो चांदी है, जो सोना है
वह सारा इस बच्चे का है
जो तेरा है, जो मेरा है

यह बच्चा किसका बच्चा है
यह बच्चा सबका बच्चा है। ❑

–लिप्यंतरण : सरवर



काशिनाथ त्रिवेदी

कैसी है बच्चों की दुनिया?

काशिनाथ जी का जीवन बालकों को समर्पित था। उन्होंने कहा है कि बालकों की दुनिया अनोखी है, अनमोल है, लुभावनी है और बालकों जैसी है। काशिनाथ जी आजाद भारत में मध्यप्रदेश के पहले शिक्षामंत्री थे। उन्होंने महात्मा गांधी के साथ काम किया था। उनके लेखन का लगातार अनुवाद किया करते थे और गिजुभाई के साथ नूतन बाल-शिक्षण संघ की शिक्षण पत्रिका का संपादन करते थे। काशिनाथ जी का प्रस्तुत आलेख बचपन में डुबकी लगाने का हमें एक अवसर देता है। आनन्द देता है। जो पढ़कर ही पाया जा सकता है। सं. ❑

बालकों की दुनिया बालकों जैसी है। बालक इस लोक के देवता हैं। उनकी दुनियां देवलोक की दुनिया है। वह भोली-भाली है। वह सीधी-सादी है। उसमें मिठास है, उल्लास है, ममता है, मुहब्बत है। उसमें किलक है, पुलक है, हंसी है, खुशी है। उनमें जीवन है, जाग्रति है। वह छिन-छिन, पल-पल, बढ़ने वाली है। उसका विकास चौमुखी है। उसका प्रकाश, उसकी ज्योति, अनोखी है। उसमें हीरे हैं, मोती हैं, जवाहर हैं। ईंट, पत्थर और रोड़े उसमें हैं। शहीदों और साधु-संतों की टोली उसमें है। मरने-खपने वाले उसमें हैं। जीने-जिलाने वाले उसमें हैं। चलने और चलाने वाले उसमें हैं। मर-मिटने की साधवाले वहां है। तिल-तिल कर के मरने वाले वहां हैं। ऊंची उड़ाने भरने वाले हैं। दूर की कौड़ी लाने वाले वहां हैं। काम, काम और काम को चाहने वाले वहां हैं। सत्य, शिव और सुन्दर के उपासक वहां हैं। उसमें मानवता है। उसमें बन्धुत्व है। उसमें सरलता है। उसमें सहृदयता है। पर-दुःख कातरता भी वहां है। दानशीलता वहां है। निर्भयता और निःस्पृहता वहां है। वहां सब समान हैं। सब निरभिमान हैं। वह अनोखी है, चोखी है, मनभावनी है, बेहद लुभावनी है, परम पावनी है। बालकों की दुनिया बालकों जैसी है।

वह कैसी नहीं है?

वह बड़ों की सी नहीं। वह बेहूदी नहीं। अपावन वह नहीं। अशोभन वह नहीं। अमानुष वह नहीं। उसमें ऊंच-नीच का भेद नहीं। अपने-पराये का भेद नहीं। अमीर-गरीब का भेद नहीं। पशुता उसमें नहीं। निर्दयता उसमें नहीं। लूट-खसोट, दावं-पेंच, उखाड़-पछाड़ उसमें नहीं। मार-धाड़, धाक-धमक, लालच-इनाम उसमें नहीं।

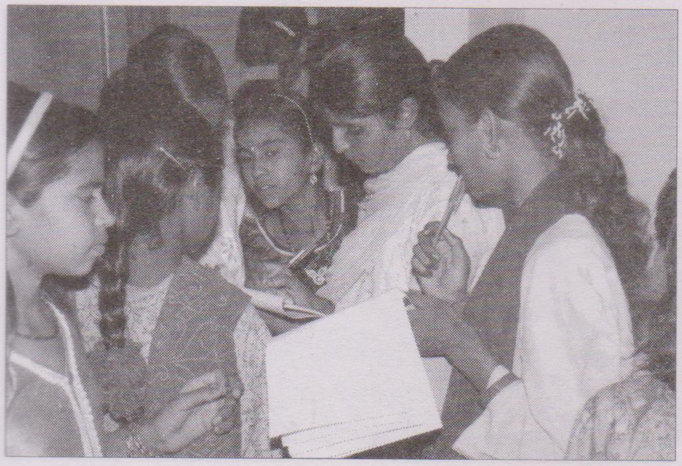
वह क्या चाहती है?

वह बड़ों का ध्यान चाहती है। मान चाहती है। सम्मान चाहती है। बड़ों का प्रेम, बड़ों की पुचकार, बड़ों का आदर, बड़ों का सत्कार वह चाहती है। और हक से

चाहती है। बड़ों की चाह और उनके उछाह पर उसका अधिकार है। बड़ों का त्याग, बड़ों की तपस्या, बड़ों का संयम, बड़ों के नियम उसके लिए हैं, उसके लिए होने चाहिए। वह चाहती है कि बड़ों की कहनी और करनी में फर्क न हो। वह चाहती है कि बड़े अन्दर और बाहर से एक हों। वह चाहती है कि बड़ों को अपने बड़प्पन का झूठा अभिमान न हो। वह चाहती है कि बड़े लोग बच्चों को मिट्टी का ढेला न समझें। वह चाहती है कि बड़े लोग बच्चों को कठपुतली का मेला न समझें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों को अपना गुलाम न समझें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों को एकदम बेकाम न समझें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों की जरूरतों को समझें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों से बेवफाई न करें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों की पिटाई न करें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों को नकलची न बनायें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों को डरपोक न बनायें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों को हैरान न करें। वह चाहती है कि बड़े बच्चों को परेशान न करें।

क्यों चाहती है?

क्योंकि बच्चे बड़ों के मेहमान हैं। बड़ी मिन्नत और मनुहार के बाद आने वाले मेहमान हैं। अनोखे और अजनबी मेहमान हैं। वे दुनिया में नये-नये आये हैं। नाजुक और नन्ही सी देह लाये हैं। दुनिया की हर चीज उनके लिए नई है। हर आदमी उनके लिए नया है। हर काम उनके लिया नया है। हर दिन और हर घड़ी उनके लिए नई है। मेहमान पूजा जाता है। मेहमान की खातिर होती है। मेहमान को लोग हाथों में लिए फिरते हैं। मेहमान के सुख और आराम पर सबका ध्यान रहता है। मेहमान को कोई नाराज नहीं करता। मेहमान को कोई भूखों नहीं मारता। मेहमान को कोई नंगा नही रखता। मेहमान की पिटाई नहीं होती। मेहमान की बुराई नहीं होती। मेहमान डराया नहीं जाता। धमकाया नहीं जाता। मेहमान दुरदुराया और ठुकराया नहीं जाता। मेहमान की झूठी खुशामद नहीं होती। मेहमान की झूठी तारीफ नहीं की जाती। नचाया नहीं जाता। मेहमान को घर का कोना-कोना दिखाया जाता है। घर की हर जरूरी चीज की जानकारी उसे दी जाती है। उसका हर काम वक्त पर किया जाता है। उसे घर में अलग जगह ही दी जाती है। उसे वक्त पर नहलाया-धुलाया जाता है। वक्त पर खिलाया-पिलाया जाता है। घर में मेहमान के दिलबहलाव का बंदोबस्त किया जाता है। गांव या नगर की देखने लायक चीजें और जगहें उसे दिखाई जाती हैं। मिलने लायक लोगों से उसे मिलवाया जाता है।



परिचय

काशीनाथ त्रिवेदी शिक्षा के प्रति समर्पित एक तेजस्वी ऋषि थे। वर्ष 1939 के आस-पास उन्होंने हिन्दी में शिक्षण पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया था। उस समय पूरे देश में बाल शिक्षण को समर्पित लोगों की एक श्रृंखला बन गयी थी। जगह-जगह बालनिकेतन अथवा बाल मंदिर खोले जा रहे थे।

मोन्तेस्सोरी का शिक्षा दर्शन एक नूतन शिक्षा धारा के रूप में इन सब संस्थाओं का प्रेरणा स्रोत था। काशीनाथ जी इसी शिक्षा धारा के एक पुरोधा थे। वे आजाद भारत में मध्यप्रदेश के पहले शिक्षा मंत्री थे। शिक्षा मंत्री के रूप में वे गांधीवादी शिक्षा परम्परा की नींव रख सके थे। अपने गांव पीपल्याराव, इंदौर से वे आजादी के बाद गांव-गांव अलख जगाने का काम करते रहे। ❑

उसकी छोटी-मोटी हर जरूरत का खयाल रखा जाता है। उसका सब कुछ अलग होता है और स्वतंत्र होता है। उसके काम में कोई रुकावट नहीं डालता। उसकी नींद में कोई खलल नहीं पहुंचाता। उसकी आजादी में कोई फर्क नहीं आ पाता। वह मेहमान होता है। और घर के छोटे-बड़े सब उसके मेजबान होते हैं। सब उसका खयाल रखते हैं सब उसका लिहाज रखते हैं। कोई नहीं चाहता कि उसका दिल दुखे, वह नाराज हो, हैरानी या परेशानी का शिकार हो और घर छोड़कर भाग खड़ा हो।

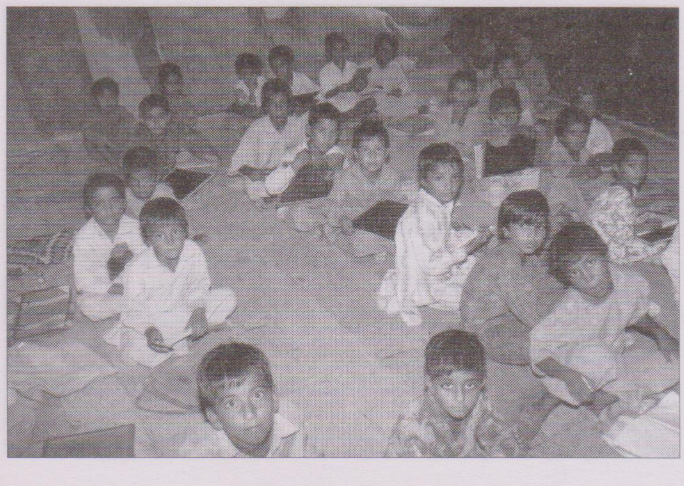
यह हमारी सभ्यता है। सदियों पुरानी सभ्यता। इसी के बल पर अब तक हम जिन्दा रहे हैं और आगे भी जिन्दा रहेंगे। इसने हमें सिखाया है कि मेहमान को, अतिथि को, फिर वह कैसा ही क्यों न हो, देव समझो; उसका सम्मान करो। उसके सामने नम्र बनो। दिल से उसकी सेवा करो और उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दो। जब तक इस चीज को हमने अपने जीवन में कायम रखा, उसके मर्म को समझा और इसकी साधना में अपना सब कुछ स्वाहा कर दिया, तब तक हम दुनिया में अद्वितीय रहे। शान के साथ जिए और शान के साथ मरे। आज यह चीज हमारे हाथ में नहीं है। दिल और दिमाग में नहीं है। आदत और अभ्यास में नहीं है। इसीलिए आज जीवन में मिठास नहीं है, उल्लास नहीं है, सुख नहीं है, संतोष नहीं है, शांति नहीं है, सरलता और सरसता नहीं है। आज जीवन रूखा-रूखा है, मुरझाया-सा है, दुखी है, अशांत है, कड़ुवाहट और खिन्नता से भरपूर है, कुण्ठित है, कुन्द है। चूंकि बालक मेहमानों का भी मेहमान है, इसलिए जरूरी है कि उसकी मेहमानदारी में कोई कसर न रहे। कोई त्रुटि, कोई एब न रहे। इसी में मेहमान की भी इज्जत है और मेजबान की भी।

यह हमारी सभ्यता है। सदियों पुरानी सभ्यता। इसी के बल पर अब तक हम जिन्दा रहे हैं और आगे भी जिन्दा रहेंगे। इसने हमें सिखाया है कि मेहमान को, अतिथि को, फिर वह कैसा ही क्यों न हो, देव समझो; उसका सम्मान करो। उसके सामने नम्र बनो। दिल से उसकी सेवा करो और उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दो। जब तक इस चीज को हमने अपने जीवन में कायम रखा, उसके मर्म को समझा और इसकी साधना में अपना सब कुछ स्वाहा कर दिया, तब तक हम दुनिया में अद्वितीय रहे।

पारखी कितने हैं?

मगर सवाल तो यह है कि क्या सचमुच ही बालक हमारे घरों में आज मेहमान की तरह पाला-पोसा जाता है? कोई उसे ऐसा मेहमान समझता भी है? कोई उसकी ऐसी मेहमानदारी का खयाल रखता भी है? बड़ों की इस दुनिया में बालक को बालक समझने वाले कितने हैं? बालकों से उनकी शक्ति के अनुसार काम लेने वाले कितने हैं? बालकों की रुचि-अरुचि का विचार करने वाले कितने हैं? बालकों के लिए उनकी जरूरत की सब चीजें जुटा देने वाले कितने हैं? बालकों की समुचित विकास की चिंता रखने वाले कितने हैं? बालकों की आशाओं और आकांक्षाओं को जानने वाले और जानकर उनकी कद्र करने वाले कितने हैं? बालकों के सपनों और उनकी उड़ानों की दाद देने वाले कितने हैं? बालकों के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होने वाले कितने हैं?

कितने हैं, जो समझते हैं कि बालक का भी अपना व्यक्तित्व है? वह भी मान-अपमान को समझता है? प्यार से पुलकता और दुत्कार से सहमता है? कितने हैं, जो जानते और मानते हों कि बालक निरा बालक नहीं



है, वह भविष्य का मानव, मनुष्य का पिता और मानव संसार का आधार है? कितने हैं, जो मानते हों कि मनुष्य बालक का चेहरा है, बालक मनुष्य का स्वामी है, गुरु है? कितने हैं, जो जानते हों कि बालक निरन्तर गतिशील है, क्रियाशील है, विकासमान और प्रकाशमान है? वह चुप नहीं रह सकता। वह भोंदू नहीं है – बुद्धु नहीं है। कितने हैं, जो जानते हों कि बालक में अनन्य शक्तियां छिपी पड़ी हैं? शक्तियों का अखूट स्रोत उसके पास है? वह शक्तिधाम है? कितने हैं जो मूर्तिमती स्वतंत्रता के रूप में उसका दर्शन करते हों? स्वयं स्वतंत्र रहते हों और उसे स्वतंत्र रहने देते हों? कितने हैं, जो जानते हों कि बालका का मन स्फटिक की तरह निर्मल है। समीर की तरह स्वतंत्र और उन्मुक्त है।

कितने हैं, जो जानते हों कि बालक में मैल नहीं, गांठ नहीं, दुराव-छिपाव और अलगाव नहीं। मैल हम पैदा करते हैं। गांठ हम जमाते हैं। गढ़ते-छोलते हम हैं। दुराते-फिराते और अलगाते भी हम हैं। बांध और सड़ांध भी हमारी उपज है। बालकों की नई दुनिया इन सब बुराइयों से बचना चाहती है। इनसे दूर, बहुत दूर, रहना चाहती है। कोई उसे बचायेगा। कोई उसे दूर रखेगा। बचाने वाला सुखी होगा। अवश्य सुखी होगा।

कितने हैं, जो जानते हों कि बालक में मैल नहीं, गांठ नहीं, दुराव–छिपाव और अलगाव नहीं। मैल हम पैदा करते हैं। गांठ हम जमाते हैं। गढ़ते–छोलते हम हैं। दुराते–फिराते और अलगाते भी हम हैं। बांध और सड़ांध भी हमारी उपज है। बालकों की नई दुनिया इन सब बुराइयों से बचना चाहती है। इनसे दूर, बहुत दूर, रहना चाहती है। कोई उसे बचायेगा। कोई उसे दूर रखेगा। बचाने वाला सुखी होगा। अवश्य सुखी होगा।



कैसी होनी चाहिए?

बालकों की नई दुनिया कैसी हो? फूलों-सी, फुलवाड़ी-सी। खिली हुई, खिलखिलाती हुई। हरी-भरी, फूली-फैली। भौरों की गूंजवाली। तितलियों की छविवाली। चिड़ियों की चहक वाली। कोयल की कुहुक वाली। प्रकृति की प्यारी। काट-छांट से न्यारी। माली के नयनों की लाली। मालिन के हिरदे की लाली। नई, निराली, सुख, शांति और संतोष वाली।

आदर्श यह हो सकता है। स्वप्न इसे कहा जा सकता है। सनक का नाम इसे दिया जा सकता है। असंभव और अस्वाभाविक कहने वालों का मुंह तोड़ा जा सकता है पर दरअसल यह न सपना है, न सनक है, न खब्त है। असंभव और अस्वाभाविक भी यह नहीं है। कोरमकार आदर्श भी यह नहीं है। यह तो सवा सोलह आने व्यवहार की बात है। समझ की और सूझ-बूझ की बात है। सबके लाभ और सबके मतलब की बात है।

अनहोनी कब तक?

अनहोनी यह तभी तक है, जब तक बच्चों को बच्चा न समझने की और बड़ों के गज से बच्चों को नापने की गलती हम करते हैं। यह गलती दशरथ और कौशल्या ने नहीं की। नन्द और यशोदा ने नहीं की। सूर और तुलसी ने नहीं की। रसखान और रहीम ने नहीं की। हरिओम और मैथिलीशरण ने नहीं की। इन्होंने बालक को भगवान का मेहमान माना। इनके बालक बालक न रहे। वे भगवान बन गए। औरों को अमर बना गए। बालक में यह शक्ति है। इस शक्ति को जिन्होंने पहचाना, वे खुद भी उबर गए और बालकों को भी उबार गए। अपने-अपने ढंग से, अपनी-अपनी जरूरत के अनुसार। हर हलके और अमानुष ध्येय के लिए जो साध्य है, एक परम उन्नत और परम पवित्र ध्येय के लिए क्या वही साध्य नहीं हो सकता। इस काम

ध्येय के लिए क्या वही साध्य नहीं हो सकता। इस काम में, जो दरअसल भागीरथ काम है, बच्चों की दुनिया को भूलकर चलने वाले, उसकी अपेक्षा करने वाले, पग-पग पर ठोकरें खायेंगे और कभी कामयाब न हो सकेंगे। यह पत्थर की लकीर है, इसमें कोई शक नहीं।

सच्चे पारखी कौन हैं?

आज बालकों की सच्ची शक्ति को पहचानने वाले दुनिया में इने-गिने लोग ही हैं।

मां मोण्टेसोरी-आजकल के इस भीषण युग में बालक की इस विशुद्ध शक्ति को इटली की उस बूढ़ी ब्रह्मचारिणी ने पहचाना है, जो बहत्तर पार की होकर भी अडियार में बैठ कर दुनिया के बालकों के उज्ज्वल भविष्य का चिंतन किया करती है। डाक्टर मोण्टेसोरी के नाम से दुनिया उसे जानती है।

गिजूभाई-हिन्दुस्तान के दो गुजरातियों ने भी इस जमाने में बालक की इस शक्ति को खूब पहचाना। एक ने मरते दम तक यहां उसकी अद्भुत वकालत की, और अब भगवान के दरबार में पहुंचकर वहां भी वह जरूर बालकों के लिए जूझ रहा होगा। उसे चैन कहां? उसे सब्र और संतोष कहां। वह काठियावाड़ का ब्राह्मण, बढ़वाण का वकील और भावनगर के बाल-मंदिर का गिजुभाई आज इस दुनिया में नहीं है, पर इस देश के बालकों की दुनिया में वह अमर हो गया और उसने बालकों को अमर बना दिया।

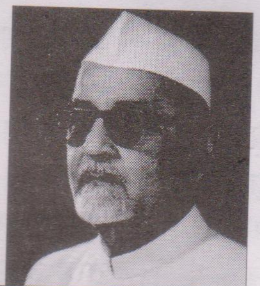
हिन्दुस्तान के दो गुजरातियों ने भी इस जमाने में बालक की इस शक्ति को खूब पहचाना है। एक ने मरते दम तक यहां उसकी अद्भुत वकालत की, और अब भगवान के दरबार में पहुंचकर वहां भी वह जरूर बालकों के लिए जूझ रहा होगा। उसे चैन कहां? उसे सब्र और संतोष कहां। वह काठियावाड़ का ब्राह्मण, बढ़वाण का वकील और भावनगर के बाल-मंदिर का गिजुभाई आज इस दुनिया में नहीं है, पर इस देश के बालकों की दुनिया में वह अमर हो गया और उसने बालकों को अमर बना दिया।



महात्मका गांधी- दूसरा काठियावाड़ का एक बनिया, जिसे दुनिया पहले साबरमती का संत और अब सेवाग्राम का साधु कहती है, बच्चों का बड़ा बैरिस्टर है। उसने अपनी जिंदगी के पिछले चालीस बरस बच्चों की तरह बिताये हैं। आज बुढ़ापे में भी उसका बचपन कायम है। बच्चों का वह भक्त है। बच्चों को वह आजाद और सुखी देखना चाहता है। बड़ों की और बच्चों की आजादी के लिए वह रात-दिन तड़पता रहता है। बच्चों की नई दुनिया का एक नया सपना उसने देखा है। बुनियादी तालीम के नाम से उसके सपने का एक सच्चा महल सारे देश के बाल-गोपालों के लिए धीरे-धीरे, बड़ी मुसीबतों के बीच इस देश में आज चुना जा रहा है।

पारखी और भी हैं। यहां भी हैं। बाहर भी हैं। सबका यही कहना है कि बालक फूल हैं। फूलों की सुकुमारिता उनमें है। फूलों की सुगन्ध उनमें है। फूलों की तासीर उनमें है। वे फूलों की तरह खिलते और फूलों की तरह मुरझा जाते हैं। वे सिर पर चढ़ाने को हैं; पैर तले कुचलने को नहीं।

आईये, हम इन फूलों के सच्चे माली बनें और अपनी इस दुनिया में बच्चों की इस फुलवाड़ी को सदा हरी-भरी और तरोताजा रखने की कोशिश करें। काम मुश्किल है, उन्हीं के लिए, जो करना नहीं चाहते; आसान है उनके लिए, जो करने को कमर कसे बैठे हैं। ❑



जाकिर हुसैन

नन्हा मदरसे चला

भारतरत्न डॉ जाकिर हुसैन भारत के तीसरे राष्ट्रपति थे। गांधीजी द्वारा संचालित हिंदुस्तानी तालीम संघ के कर्मठ कार्यकर्ता थे। महात्मा गांधी के निमंत्रण पर वे प्राथमिक शिक्षा के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष भी बने। हालांकि उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा बर्लिन से प्राप्त की थी लेकिन वे ताउम्र स्वदेशी शिक्षा के लिए प्रयास करते रहे। उनका जन्म हैदराबाद में हुआ था। बचपन में ही उन्होंने अपने माता-पिता को खो दिया था। लाचारी की हालत में भी वह अपनी मेहनत के बूते पर छात्रवृत्ति पाकर आगे बढ़ते रहें। जाकिर हुसैन भारत में आधुनिक शिक्षा के सबसे बड़े समर्थकों में से एक थे। अपने नेतृत्व में उन्होंने राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय स्थापित किया जो आज जामिया मिलिया इस्लामिया हो गई है। १९२७ में यह संस्थान बंद होने के कगार पर था किंतु हुसैन साहब के शैक्षणिक और प्रशासनिक नेतृत्व के बूते पर यह अपनी पहचान बनाने में कामयाब रहा। एक शिक्षक के रूप में डॉ जाकिर हुसैन ने महात्मा गांधी और हाकिम अजमल खान के आदर्शों को प्रचारित किया और देश के कई शैक्षिक सुधार आंदोलन में सक्रिय रूप से सहयोग किया। सं. ❒

लीजिए, अब आपका नन्हा मदरसे चला। आदमी का बच्चा शुरू-शुरू में ऐसा बेबस होता है, और बड़ा होकर मानवता के जिस स्तर पर उसे पहुंचना होता है, वह इतना ऊंचा है कि उसकी शिक्षा में बहुत दिन लगते हैं, और उसके विकास के लिए बड़े यत्न करने पड़ते हैं। इस शिक्षा और विकास के काम में आप, यानी नन्हें के मां-बाप, अभिभावक, अकेले जो कुछ कर सकते थे कर चुके। अब शायद आप समझते हैं कि काम केवल आपसे न संभलेगा। इसमें औरों की मदद की जरूरत है। इसलिए नन्हा मदरसे भेजा जाता है। लेकिन शिक्षा और विकास का काम ऐसा मिला-जुला काम है कि अनेक प्रकार की शक्तियां सभी ओर से सिमट कर बच्चे के व्यक्तित्व में इस तरह घुल-मिल जाती हैं, कि उन्हें अलग-अलग करना कठिन है। मदरसा जब इस काम को अपने सिर लेता है, तब तक घर बहुत कुछ बना-बिगाड़ चुकता है। फिर मदरसे के सुपुर्द होने के बाद भी घर का प्रभाव मिट नहीं जाता या तो घर और मदरसे साथ-साथ चलते हैं, और एक-दूसरे के काम को समझ कर हाथ बढ़ाते हैं, या वह एक तरफ खींचता है, दूसरी तरफ उसकी ढोलकी अलग और इसका राग अलग।

अब जो नन्हा मदरसे चला, तो देखना यह है, कि आप यानी मां-बाप और अभिभावक इसे पहले से क्या बना चुके हैं। मगर आप न जाने क्या-क्या हो सकते हैं। हो सकता है, कि आप उन अभागों में हो, जिनके पास दूसरों का कमाया हुआ धन इतना होता है कि समझ में नहीं आता उसका करें क्या? धन की विपुलता का बोझ

प्राय: अक्ल की कमी से हल्का होता है। क्या अजब है, कि उसका भार भी कुछ इसी तरह हल्का हुआ हो। अगर ऐसा है, तो अनुमान यही है कि आपने नन्हें के विकास का कर्त्तव्य धन-व्यय करके पूरा करना चाहा होगा। नन्हें के लिए अनगिनत, बेकार नौकर होंगे और बेजरूरत सामान तरह-तरह के कपड़ों के बक्से भरे होंगे, लेकिन शायद ही कोई पोशाक इस बच्चे के लिए उपयुक्त होगी। जूतों की लम्बी कतारें होंगी और नन्हा अक्सर नंगे पैर रहता होगा। खिलौनों का एक अजायब-घर होगा, जिनसे बच्चा कभी का उकता चुका होगा। यह नौकरों पर आपकी नकल करके बेजा हकुमूत जताता होगा। घर में लाड़-प्यार करने वाली दादी और नानी होंगी, तो उन्हें खुश करने के लिए जब-जब आपको भी कुछ उल्टा-सीधा सुना देता होगा। अपने हाथ-पांव से काम करने की नौबत मुश्किल से ही कभी आती होगी, क्योंकि यह बड़प्पन की शान के खिलाफ है। बस, खाना खुद हजम करना होता होगा, अभिमानी होगा और अब यह मदरसे जाएगा। आपके किसी दोस्त ने बताया होगा, कि अमुक मदरसे भेजो, वहां फीस ज्यादा है, इसलिए मदरसा जरूर अच्छा होगा। आपको अगर फुर्सत मिली होगी, तो एक खत अंग्रेजी में हैडमास्टर के नाम लिख दिया होगा और कुंवर साहब दो-तीन नौकरों और एक-दो धायों के साथ आपकी बड़ी मोटर में बैठकर मदरसे में पधारे होंगे।

अगर नानी-अम्मा ने एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर बच्चे को मदरसे से न उठा लिया, तो सच मानिए कि मदरसा आपके किए को अनकिया किए बिना अपना कर्त्तव्य मुश्किल से पूरा कर सकेगा, और फिर न मालूम कि घर कहां-कहां मदरसे की राह में रुकावट बनें?

हो सकता है कि आप उन स्वावलम्बी मनुष्यों में से हों, जो अपने परिश्रम और योग्यता से आगे बढ़कर अपने पेशे या कारोबार में विशेष महत्व प्राप्त करते हैं, या किसी ऊंचे सरकारी पद पर पहुंच जाते हैं। आपको अवश्य यह चिन्ता होगी कि अपने बच्चे को अपने से और अच्छी शिक्षा दें। लेकिन आपको खुद इतनी कम फुर्सत होगी कि उसकी देखभाल कोई दूसरा ही करता होगा। लेकिन जिस तरह आप अधिक व्यस्त रहते हुए भी जीवन के सभी प्रधान क्षेत्रों-धर्म, अर्थनीति, राजनीति के संबंध में बस अंतिम निर्णय करना और उनका प्रचार अपने अल्पज्ञ और थोड़ी पूंजीवाले साथियों में करना आवश्यक मानते हैं, और समझते हैं कि इससे अपने व्यस्त जीवन की एकांगी प्रवृत्ति में कुछ सीध पैदा करेंगे, उस तरह आप अपने बच्चों की ओर ध्यान न दे सकने की कमी को, इसके संबंध में और इसी शिक्षा के साधनों के संबंध में, खेद है कि बिल्कुल अंतिम निर्णय पर पहुंच कर, पूरा करना चाहते हैं। आप क्योंकि एक सफल मनुष्य हैं, इसलिए अपनी दृष्टि में आप ही मनुष्यता के मानदण्ड (मयार) हैं। अगर आपकी दृष्टि में कहीं बच्चे का रूप अधिक ठीक जचे कि वह आप ही की सहज क्षमताओं का स्वामी है, तो शायद आपकी राय होगी कि आपका बच्चा -'जीनियस' प्रतिभा सम्पन्न है। इसकी समझ के क्या कहने, इसकी धारणा शक्ति का क्या पूछना। इसे दो कविताएं जबानी याद करा दी गई हैं, जो आप अक्सर इस गरीब से अपने मित्रों के सामने पढ़वाते हैं। यह उन्हें एक खास ढंग से सिर हिला-हिलाकर और हाथ बढ़ा-बढ़ा कर सुनाता है। आपने स्वयं अत्यंत कृपा करके किसी इतवार के दिन इसे अंग्रेजी के वाक्य रटा दिए हैं।

यह रटा हुआ भी इसे लोगों के सामने दुहराना पड़ता है। और इन प्रदर्शनों के बाद आप अपने दोस्तों को यकीन दिलाते हैं कि यह लड़का तो जीनियस है, जीनियस! मगर आपको कौन बताए कि इस ऊंचे मानदण्ड के अनुसार तो सारे तोते और सारे बन्दर भी जीनियस हैं

हो सकता है कि आप उन स्वावलम्बी मनुष्यों में से हों, जो अपने परिश्रम और योग्यता से आगे बढ़कर अपने पेशे या कारोबार में विशेष महत्व प्राप्त करते हैं, या किसी ऊंचे सरकारी पद पर पहुंच जाते हैं। आपको अवश्य यह चिन्ता होगी कि अपने बच्चे को अपने से और अच्छी शिक्षा दें। लेकिन आपको खुद इतनी कम फुर्सत होगी कि उसकी देखभाल कोई दूसरा ही करता होगा।

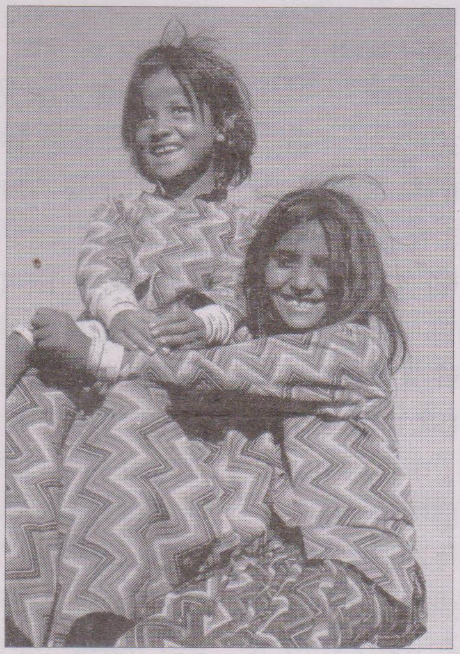
और अगर कहीं काम की अधिकता के कारण आपके रग-पुट्ठे कुछ कमजोर हो गए हैं, जिगर का काम भी कुछ खराब है और बदकिस्मती से बच्चे से कोई मन के विरुद्ध बात भी कई बार हो गई है, क्योंकि ऐसी दशा में मन के विरुद्ध बात करने के लिए किसी बड़े हुनर की जरूरत नहीं, तो आप अपनी सहज-बुद्धि से इस ठीक नतीजे पर भी पहुंच सकते हैं कि वह गधा है। अपनी दूसरी रायों की तरह आप अपनी इस राय का भी वक्त-बे-वक्त ऐलान करते होंगे, और आदमी के इस बच्चे को गधा बनाने में अपने बस भर तो कसर उठा न रखते होंगे। और अब आपका यह जीनियस या आपका यह गधा अपने साथ बड़प्पन या मिथ्यानुमान (सुपीरिअरिटी कॉम्प्लेक्स) या उससे भी अधिक हीनता का मिथ्याभिमान (इनफीरिअरिटी कॉम्पलेक्स) लेकर मदरसे जाता है। देखिए, मदरसा आपकी पैदा की हुई उलझनों को किस तरह सुलगाता है और आपका हस्तक्षेप करना वहां भी अधिक और गुत्थियां तो नहीं डालता? शायद आपका हरदम अपने काम में लगा रहना ही मदरसे को अपना काम करने दे और आपका 'जीनियस' या गधा आदमी बन जाये।

लेकिन संभव है कि न आप अतुल धन-दौलत के उत्तराधिकारी हों, न दिन-रात कमाई के सफल संघर्ष में लीन। बल्कि साधारण कोटि के ठीक भले-मानस हों। अपनी दुकान रखते हों, किसी दफ्तर में नौकर हों, किसी मदरसे में अध्यापक हों, रोज कुछ समय अपने बच्चों में बिता सकते हों, घर का काम आपकी पत्नी स्वयं संभालती हो, नौकर चाकर न हों, सभ्य और योग्य पत्नी घर को साफ-सुथरा रखती हो, और बच्चों की भी देखभाल करती हो तो आपका बच्चा बहुत से उन खतरों से सुरक्षित है, जिनकी चर्चा अभी कर चुका हूं। मगर बच्चा फिर भी बच्चा है। कभी अधिक साफ-सुथरे घर में कहीं कुछ गिरा देगा, धुली चांदनी मैली हो जाएगी, मां जो रोटी बनाने में लगी है उसे देखकर नाराज होगी और कहेगी, अच्छा आने दे बाबूजी को अपने, कल ही तुझे मदरसे न भिजवाया तो। कभी बच्चे से कोई चीज टूट जाएगी-वही मदरसे की धमकी। कभी खेल-कूद में बच्चा चिल्लाएगा-शोर मचाएगा, अभी कपड़े बदले गए थे अभी धूल में सना मां के सामने आएगा, तो वही मदरसे भेजने की धमकी दी जाएगी। धमकी का प्रभाव बढ़ाने के लिए मदरसे की बड़ी भयानक तस्वीर भी सामने लाई जाएगी। और यों आज के दिन के लिए क्या ही खूब तैयारी की गई होगी, इसलिए कि आपका नन्हा मदरसे चला। या हो सकता है कि आप हिन्दुस्तान के उन करोड़ों किसानों और मजदूरों में से एक हों, जिनके बच्चों के लिए बस घर का कठिन जीवन ही मदरसे का काम देता है। जिनके लिए मदरसे खोलने को कभी काफी पैसे नहीं मिल पाते और जिनके बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिए इतने मदरसों की जरूरत है, कि हर एक शिक्षा-विशेषज्ञ उंगलियों पर हिसाब लगाकर बता देता है कि इतने मदरसे खोलने के लिए जितने धन की जरूरत है, उतना तो मिल ही नहीं सकता। वे यह बात बताकर समझते हैं कि बड़ी दूर की कौड़ी लाए हैं। फिर इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी अगर कुछ मदरसे इनके लिए बन जाते हैं, तो ये अपने बच्चों को इन मदरसों में भेजने को तैयार नहीं होते। मैंने यह गलत कहा कि आप शायद उन करोड़ों किसानों या मजदूरों में से एक हैं। उन बेचारों को इतना समय कहां कि बेफिक्रों की तरह रेडियो पर भाषण सुनें। कहीं-कहीं शिक्षा के अनिवार्य हो जाने के कारण, कहीं इसके निःशुल्क हो जाने के लालच से, कहीं आस-पास के सम्पन्न लोगों की देखा-देखी ऐसे किसान या मजदूर का नन्हा भी पढ़ने के लिए बैठा दिया जाता है। वह नन्हा जो घर के कामों में मां-बाप का हाथ बंटाता है, जो बकरियां चरा लेता है, खेत पर बाप के लिए रोटी ले जाता है, मां जब उपले थापती या रोटी बनाती है तो वह छोटी बहन को बहला देता है। हाथ-पांव का बड़ा मजबूत है, बस आंखें दूखती हैं, यो नाक बहती है। लेकिन आंख मिलाकर बात करता है, बे-सहारे जिन्दा रह सकता है, आदमी का बच्चा है, कोई मुरमुरों का थैला नहीं, और हां न यह जीनियत है-न गधा मगर इसका बाप भी चाहता है कि बच्चा पढ़कर पटवारी बन जाये। यह न हो सके तो लाल-पगड़ी वाला चपरासी ही सही। अनिवार्य शिक्षा का कानून इसके जिले के कुछ गांवों में लागू हो गया है, इसलिए यह भी आज मदरसे जाता है।

अब आप ही देखिए कि कैसे भांति-भांति के बच्चे मदरसे जाते हैं। घर ने कैसे-कैसे नमूने बनाये हैं,

क्या-क्या आशाएं लगी हैं, और उन्हें पूरा करने का क्या उपाय है? मां-बाप की मानसिक उलझन को देखिए, उनके नतीजे यानी बच्चों की मानसिक गुत्थियों पर ध्यान दीजिए- तो मालूम होता है कि मदरसे का काम भी कितना कठिन है? लेकिन क्या मदरसे वाले इसे सचमुच कठिन समझते हैं? क्या उनका ध्यान अपने काम की इस कठिनता की ओर जाता है? उनकी ये कठिनाइयां तो सुनने में आई हैं कि वेतन कम है, काम बहुत है, अफसरों को सलाम झुकाने में या उसकी तदबीर में फुरसत का और कभी-कभी काम का भी बहुत वक्त निकल जाता है। छुट्टियां कम हैं, अफसर लोग पक्षपात से काम लेते हैं, और कहीं-कहीं तो महिनों तनख्वाह भी नहीं मिलती। ये सब और इन जैसी बहुत-सी शिकायतें सुनने में आती हैं, और प्राय: ठीक भी होती हैं लेकिन शिक्षा और विकास के काम की वास्तविक कठिनाई तो और ही है। यह कठिनाई तो वही है, जिसके कारण घर में विकास संबंधी अनेक भूलें हो जाती है यानी बड़ों का यह अभिमान कि वे ही सब कुछ हैं, बच्चा कुछ नहीं, वे सब कुछ जानते हैं, मंजिल जानते हैं, राह पहचानते हैं, सफर की गतिविध निश्चय कर सकते हैं, काम उनकी इच्छा के अनुकूल हो, जिसकी अनेकरूपता के क्या कहने, तो सब ठीक। इसके खिलाफ हो, तो सब गलत। उन्हें घमण्ड है कि बच्चा उनकी सम्पत्ति है, वे चाहे मनोरंजन के लिए उसे अपना खिलौना बनाएं, चाहे अपने मनमाने उद्देश्यों के लिए अपना दास। उन्हें अपनी बाजीगरी का पूरा भरोसा है कि आम को इमली को इमती हो आम बना सकते हैं। पहले बच्चा घर में लक्ष्य बनता है, इस बात का कि वह सबकी सम्पत्ति है, और मां-बाप की सर्वज्ञता के दम्भ का।

फिर कहीं मदरसे पहुंचता है। क्या मदरसा इसे इस मुसीबत से छुड़ा सकता है? क्या अध्यापक महोदय भी उस बीमारी के शिकार नहीं होते, जिसके कि स्वयं अभिभावक थे? क्या



वे भी सब कुछ नहीं जानते और सब कुछ नहीं कर सकते? क्या वे भी यह नहीं समझते कि बच्चा उनके कुशल करों में, बस, मिट्टी का कुछ लोंदा है? ये जो आकार चाहें उसे दें, और उसका मस्तिष्क जो कोरा कागज है, ये उस पर चाहे जो लिख दें। यारों ने तो शिक्षा कि विद्या-विषयक विचारों की पूरी इमारत ही इस गलत बुनियाद पर खड़ी कर ली है कि शिक्षा की व्यवस्था बस इस अहितकर प्रयत्न से की जाती है कि प्रकृति जो चाहती है वह न होने पाये, या जो हम चाहते हैं- प्रकृति को भी वही चाहना चाहिए। प्रकृति तो हर बच्चे में व्यक्तित्व-निर्माण के अनगिनत साधनों में से किसी एक विशेष साधन की सफलता चाहती है। किसी ने ठीक ही कहा है, कि हर बच्चा जो पैदा होता है वह इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर अभी मानव से निराश नहीं हुआ है और यहां पर यह धारणा बन चुकी है कि जो सांचा हमने तैयार किया है, बस वही सर्वश्रेष्ठ है।

व्यक्तित्व के मोम में पिघला कर इसे बस उसी सांचे में ढालना चाहिए और जो ठप्पा हमने बनाया है, वही सबसे अच्छा है, उसी की छाप इस पर लगानी चाहिए। इस समय जबकि मैं बच्चों के अभिभावकों और उनके अध्यापकों को लक्ष्य करता हूं। यह निवेदन किए बिना नहीं रह सकता कि आप किसी तरह अपने को मौलिक भ्रांतियों से मुक्त कर लें, बच्चे को मनुष्य का अग्रदूत समझें, उसे बेसहारे खुद भी बढ़ने दें, उसकी प्राकृतिक क्षमताओं और प्रवृत्तियों का सम्मान करें और समझें कि यह छोटा-सा जीवन अपने विकास की क्रियात्मक पूर्ति की ओर खुद कदम उठाता है। इसे सहारा दीजिए, मगर इसके चलने की दिशा तो न बदल लिए। न इसकी ओर इतना अधिक ध्यान दीजिए कि वह फिर खुद अपनी ओर ध्यान ही न दे सके, न इतनी उदासीनता ही रखिए कि इसकी वे आवश्यकताएं भी पूरी न हों- जिनमें यह सचमुच आपके अधीन है।

न लाड़-प्यार की ज्यादती से इसे - 'मिर्जा-फोया' बनाइये, न ऐसा ही, कि आपकी कठोरता के कारण वह जिन्दगी या आदमियों से ही घृणा करने लगे। मानसिक जीवन की अनेक रूपता को ध्यान में रखिये और यह विश्वास न कर बैठिए कि ऊंचे पदाधिकारियों या बड़े-बड़े वकीलों के सब बच्चों को ईश्वर खासतौर से गढ़ कर सिविल सर्विस के इम्तहान में बैठने के लिए ही दुनिया में भेजता है।



सारांश यह है, कि उन संभावनाओं के कारण, जो आपके बच्चे के मानसिक जीवन में अभी छिपी हुई हैं, इन मान्यताओं के लिए जिनका वह भार उठा सकता है- आप उसका आदर और सत्कार करें। जी हां, आप घबरायें नहीं। मैंने यही कहा कि आप बच्चे का आदर और सम्मान करें। बेबस बच्चे से लेकर एक स्वतंत्र नैतिक व्यक्तित्व तक पहुंचने का प्रयत्न सचमुच बड़ा ही सराहनीय प्रयत्न है। आपने स्वयं चाहे उस राह पर कदम उठाना छोड़ दिया हो और थक कर कहीं बीच ही में बैठ गए हों, कि बहुत से आदमियों को उस मंजिल तक पहुंचने का सौभाग्य नहीं मिल पाता, लेकिन आपका बच्चा अभी उस राह पर पहले पहल कदम उठा रहा है, उसका रास्ता तो न रोकिए, आप इस भ्रम में कभी न पड़िए कि वह आपकी सम्पत्ति है, आप जो चाहें उसे बनायें। वह आपकी सम्पत्ति नहीं है। वह तो आपके पास प्रकृति की एक धरोहर है। प्रकृति के अधिकार को अपने अधिकार से अधिक समझिए।

अध्यापकों से भी, जिनके मदरसे में ये बच्चे इसलिए भेजे जाते हैं कि समाज की दृष्टि में घर शिक्षा-विकास के कर्त्तव्य का पूर्णरूप से पालन नहीं कर सकता, मेरी यह प्रार्थना है कि आप भी अपने इस शुभ कार्य का मौलिक सिद्धान्त उसी आदर और सम्मान की भावना को बनायें। यह सिद्धान्त यदि आपके मस्तिष्क में बैठ गया, तो शिक्षा के काम में आपका रवैया ही बदल जाएगा। आप अपने साथियों को भेड़ों का समूह न समझेंगे, बल्कि उसमें हर बच्चे की विशेष क्षमताओं और मुख्य आवश्यकताओं का ध्यान रखेंगे। मैंने पारिवारिक परिस्थिति के कारण बच्चों में जो भेद उत्पन्न हो जाते हैं, उनकी ओर संकेत किया है। आप अगर उन पर नजर रखेंगे तो जहां सहारे की जरूरत है वहां धक्का लग जाएगा, जहां हिम्मत बढ़ाने से काम बन सकता है, वहां मन-मुटाव का कारण बन जाएंगे, जहां आपकी एक मुस्कुराहट से बच्चे के दिल की कली खिल सकती थी, वहां आपकी उपेक्षा से उसके मुरझाने का डर पैदा हो जाएगा। अगर बच्चे का आदर और सम्मान करना आपकी दृष्टि में एक उचित सिद्धान्त होगा, तो आप अपने छात्रों की मानसिक उलझनों को समझने की कोशिश करेंगे और हर एक के लिए उचित उपाय सोचेंगे।

इन सामुदायिक भेदों के अतिरिक्त बच्चों की मासिक आवश्यकतओं में जो विभिन्नताएं होती हैं उन पर भी आपकी दृष्टि रहेगी, तो आप कोशिश करेंगे कि जो प्रवृत्ति अधिक से अधिक बच्चों में हो उसी को समुदाय में भी शिक्षा का साधन बनायें। उदाहरण के लिए सात से बारह-चौदह वर्ष में बच्चों में अगर आप देखें तो ये हाथ से काम की ओर प्रवृत्त होते हैं, तो आप शायद इस बात पर जोर न दें कि उनकी शिक्षा बस किताबों के ही द्वारा हुआ करे और बुजुर्गों की दृष्टि में किताबों का पढ़ना-पढ़ाना ही शिक्षा कहलाता है।

छोटों के प्रति आदर-भाव तो स्नेह, आशीर्वाद और मृदुता का रूप धारण कर देता है। यह सिद्धान्त जो मैंने अभी बतलाया है, आप में बच्चे के लिए स्नेह और सहानुभूति उत्पन्न करेगा, आपको असफलताओं का सामना करने के लिए सहनशीलता और धैर्य की वह शक्ति प्रदान करेगा जो स्नेह के अतिरिक्त अध्यापक की सबसे बड़ी पूंजी है। आप बच्चों के अच्छे अध्यापक यानी प्रकृति की धरोहर के सच्चे अमीन बन जाएंगे और आपके परामर्श और आपके आदर्शों से बच्चों के पिता और अभिभावक भी अपने कर्त्तव्य को भली-भांति समझ सकेंगे और अध्यापक और अभिभावक के सहयोग से शिक्षा और विकास का काम सचमुच सुचारू रूप से सम्पन्न किया जा सकेगा। ❑

(यह आलेख अखिल भारतीय नयी तालीम संघ राजघाट, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'नयी तालीम' (११०) में प्रकाशित हुआ था।)



तारबेन मोडक

एक थी ताराबेन मोडक

ताराबेन मोडक महाराष्ट्र में शिक्षा की अलख जगाने वाली मनीषी महिला थी। उनका जन्म अप्रेल १८९२ में मुम्बई में ही हुआ था। विवाह अमरावती में हुआ लेकिन बहुत दिन गृहस्थ जीवन निभा नहीं सकीं। जीवन का लक्ष्य निराला था। अकेले ही चलना था। शिक्षा की मशाल लेकर पूरे महाराष्ट्र में निकल पड़ी ताराबेन मोडक। गिजुभाई बधेका, मां मोन्तेस्सोरी की प्रेरणा थी और सतत सहयोगी भी। ताराबेन मोडक ने महाराष्ट्र में नूतन बाल शिक्षण संघ की स्थापना भी उन्होंने की और गांव बोर्डी में अपना एक आश्रम भी खोला। भारत में बाल शिक्षा के चिंतकों में उनका नाम सदा याद किया जायेगा। राष्ट्र ने उनको पद्मश्री से भी सम्मानित किया था। यहां प्रस्तुत हैं उनकी शिक्षा चिंतन के कुछ चमकते मोती। सिर्फ बानगी के लिए। जो पाठक अधिक जानना चाहते हैं वे थोड़ा प्रयत्न करके ताराबेन के चिंतन की थाह पा सकते हैं। सं.❑

शिक्षा क्या है?

मन को एकाग्र करके काम में तल्लीन रहना शिक्षा है।
स्वयं प्रयत्नपूर्वक किसी काम को सिद्ध करना शिक्षा है।
संकटों की परवाह न करते हुए उन्हें पार कर जाना शिक्षा है।
निरंतर परिश्रम करना शिक्षा है।
स्वयं सोचना- विचारना शिक्षा है।
क्रियाशक्ति को सत्कार्य में लगाना शिक्षा है।
इच्छाशक्ति को प्रबल बनाना शिक्षा है।
अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़ना शिक्षा है।

मां मुझे मारेगी

छोटी चुन्नी ने कहा- 'देखना भला, कल से मेरी मां मुझे मारेगी।'
उसकी सहेलियों ने पूछा- 'क्यों मारेंगी?'
चुन्नी ने कहा- 'मैं इतने दिनों बीमार थी न? इसीलिए मां मुझे मारती नहीं थीं। लेकिन अब तो मैं अच्छी हो गई हूं, और आज स्कूल में भी आई हूं; अब तुम देखना कल से मां मुझे मारेगी।'
'तो क्या तुम्हारी मां तुम्हें रोज ही मारती है?'
'हां, रोज मारती है; लेकिन जब बीमार होती हूं, तो नहीं मारती।' फिर चेहरे पर दुःख का भाव लाकर कहने लगी- 'हाय, अब सब खतम! अब मां मारेंगी!' उस सभी सहेलियां उसके दीनतापूर्ण मुंह की ओर एकटक देखने लगी।
चुन्नी की तबीयत अच्छी नहीं रहती। उसके शरीर की बाढ़ रुक सी गई है। वह दिन-ब-दिन और भी दुबली होती जाती है। कई दिनों से मैं सोच रही थी कि आखिर चुन्नी की यह दशा क्यों है? आज मुझे अपने इस प्रश्न का जवाब मिल गया। चुन्नी हमेशा यही न सोचती होगी कि वह कभी स्वस्थ न रहे! जब तक बीमार है, तब तक मार से बची रहती है। अतएव स्वस्थ होना उस नन्हीं सी बालिका के विचार में एक आफत ही मोल लेना था। ऐसी

दशा में यदि वह सदा यही सोचा करती हो कि बीमार रहना ही अच्छा है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? बेचारी चुन्नी! क्या उसकी मां कभी सोचती भी होगी कि अपने ही अविचारपूर्ण व्यवहार के कारण उसकी अपनी लड़की हमेशा बीमार बनी रहने की कामना किया करती है!

यदि चुन्नी के उन करुण शब्दों को, उस समय की उसकी मुख-मुद्रा को, और उसकी सहेलियों की उस सहानुभूति पूर्ण दृष्टि को कोई चल-चित्रपट पर ध्वनि के साथ अंकित करे, और वह बोलती फिल्म देश के सभी माता-पिताओं को दिखाई जाय, तो लोगों का दिल चुन्नी के लिए भी उसी तरह हिल उठेगा, जिस तरह 'कंकू' की नीरा के लिए आज भी हिल उठता है। यही नहीं, बल्कि दूसरे दिन अपने सुकुमार बच्चों पर हाथ उठाने से पहले लोग दस बार सोचेंगे- इसलिए सोचेंगे, कि चुन्नी की वह करुण वाणी, और उसका वह करुणामय मुख उनकी आंखों के सामने अवश्य ही खड़ा हो जाया करेगा!

गांव-शहर

हम गांव में रहते हैं।
तुम शहर में रहते हो।
हम खेतों में घूमने जाते हैं।
तुम बगीचों की सैर करते हो।
हमारे घर बैलगाड़ी है।
तुम्हारे घर मोटर है।
हम तोता-मैना पालते हैं।
तुम काकातुआ पालते हो।
हम दूध-रोटी खाते हैं।
तुम चार-बिस्कुट खाते हो।
हम अफीम की भाजी खाते हैं।
तुम फूलगोबी खाते हो।
हम शहर में घबराते हैं।
तुम गांव में उकताते हो।
लेकिन तुम गांव में आओ।
हम तुम्हें खुश-खुश कर देंगे।
हम तुम्हारे शहर में आयें-
तो तुम हमें खुश-खुश कर देना।
गांव का मजा तुम लूटना।
शहर का हम लूटेंगे। ❑

सार-संभाल

'माली, ऐ माली!
पौधों की सार-संभाल कब की जानी चाहिए?'
-'मालिक, बीज बोने से पहले भी,
बीज बो चुकने के बाद भी,
बीच के अंकुर आने पर भी,
कोंपलों के फूटने पर भी,
और रोपों के बढ़ने पर भी'
गुरुजी, गुरुजी!
मानवी पौधों की सार-संभाल आप कब कीजियेगा?
-'करूंगा, जब वे बड़े हो जायेंगे।
होने दो बड़े और आने दो अक्ल,
फिर खोलूंगा कॉलेज और लाऊंगा विद्वान।
अभी इन दुधमुहों को क्या देखूं?'
दोनों में चतुर कौन?
बाग का माली या शाला के गुरुजी? ❑

-तारोबेन मोडक



समिति में व

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में जनवरी से दिसम्बर २०१९ तक पूरे वर्ष विभिन्न कार्यक्रम आयोजित हुए। इन कार्यक्रमों में कई संस्थाओं और साथियों की सक्रिया भागीदारी रही। एक झलक आप दिसम्बर २०१९ की अनौपचारिका के मुखपृष्ठ पर देख चुके हैं। अब प्रस्तुत है संक्षिप्त ब्यौरा।

ग्राम सखी साक्षरता संवाद

समिति ने प्रयोग की दृष्टि से एक नया काम शुरू किया। इसका मुख्य लक्ष्य था– ग्रामीण महिला समूहों का जागरण एवं स्वावलंबन की दिशा में अभिमुखीकरण। महिला समूहों को उत्तर साक्षरता से जोड़ना और समिति में उपलब्ध उत्तर साक्षरता सामग्री की उपयोगिता के अवसर खोजना भी इस अभिमुखीकरण का लक्ष्य था। यह आयोजन लेडी बोम्फोर्ड चेरिटेबल ट्रस्ट के सहयोग से किया गया।

११ जनवरी २०१९ को ग्राम पंचायत भम्भोरिया में एक दिवसीय साक्षरता संवाद का आयोजन। इसमें ४५ महिलाओं की भागीदारी।

१९ फरवरी २०१९ को गांव बगरू खुर्द में वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम आयोजित किया गया।

१३ मार्च और ३० मार्च, २०१९ को गांव देवलिया खुर्द में महिलाओं के साथ ग्राम सखी संवाद आयोजित किये गए। लेडी बोम्फोर्ड चेरिटेबल ट्रस्ट की साक्षरता कर्मियों का तीन दिवसीय प्रशिक्षण शिविर समिति परिसर में आयोजित हुआ। इस प्रशिक्षण में ११ साक्षरता कर्मियों ने भाग लिया।

जन कला साहित्य मंच, जयपुर से जुड़े जन समूहों के साथ **१८ अप्रेल को बगरू और १९ अप्रेल, २०१९** को कालाडेरा में संवाद आयोजित किये गये। मंच के कार्यकताओं का **१४–१६ मार्च, २०१९** को समिति में प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया।

प्रार्थना सभा

३० जनवरी, २०१९ को बापू के पुण्य स्मरण के साथ प्रार्थना सभा का आयोजन। इस अवसर पर एक फिल्म का प्रदर्शन।

२ अक्टूबर, २०१९ को बापू के जन्म दिन पर प्रार्थना सभा का आयोजन। जयपुर के सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायिका डॉ. गायत्री शर्मा द्वारा भजन प्रस्तुति।

नेहरु युवा केन्द्र के नौजवान साथियों के साथ संवाद

२ अक्टूबर, २०१९ को गांधी जयंती के अवसर पर नेहरु युवा संगठन के विभिन्न जिलों से आये १०६ कार्यकर्ताओं के साथ जनजागरण संवाद।

विश्व रंगमंच दिवस

२७ मार्च, २०१९ को 'आजादी की जंग में फारसी थियेटर' विषय पर विशेष व्याख्यान भाई रणवीर सिंहजी द्वारा।

भवानी प्रसाद मिश्र जन्मोत्सव

२९ मार्च, २०१९ को प्रसिद्ध हिन्दी कवि स्व. भवानी प्रसाद मिश्र के जन्मदिन अवसर पर उनकी कविताओं की सांगीतिक प्रस्तुति उनके पुत्र श्री अमिताभ मिश्र द्वारा।

अंतराल

६–७ अप्रेल, २०१९ को नाना–नानी न्यास के सहयोग से समिति



वर्ष २०१९

में 'अंतराल' के नाम से एक अनोखा आयोजन हुआ। जीवन में नया सीखने की सहज एवं सतत प्रक्रिया का इस दो दिन के आवासीय शिविर में बालकों ने स्वयं अनुभव किया।

जिंदगी का जश्न

९ अप्रेल, २०१९ को शिक्षाविद डॉ. आनंदलक्ष्मी की स्मृति में एक सभा समिति में आयोजत की गई। इसकी संकल्पना एवं संचालन श्रीमती अरुणा रॉय का था।

फोटोग्राफी कार्यशाला 'दृग'

१५-१९ जून, २०१९ को समिति भवन में **दृग** नाम से फोटोग्राफी की प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस पांच दिवसीय कार्यशाला में फोटोग्राफी के विषय का सघन प्रशिक्षण दिया गया। कार्यशाला के मुख्य प्रशिक्षक के रूप में प्रसिद्ध फोटोग्राफर जोधपुर से शिवजी पधारे। फोटोग्राफर हिमांशु व्यास एवं अभिषेक कुमावत का विशेष सहयोग रहा।



प्रतिवेदन लेखन एवं दस्तावेजीकरण प्रशिक्षण

१९-२३ अगस्त, २०१९ को एक रिपोर्ट राइटिंग एवं दस्तावेजीकरण प्रशिक्षण आयोजित किया गया। इस प्रशिक्षण में विभिन्न संस्थाओं से आये १४ संभागियों ने भाग लिया। संकल्पना एवं संचालन डॉ. मनीष शर्मा ने किया। सुप्रसिद्ध स्वच्छिक कार्यकर्ता डॉ. मनीष सिंह का भी विशेष सहयोग रहा।

अनिल बोर्दिया स्मृति व्याख्यान

२३ सितम्बर, २०१९ को समिति में स्वर्गीय अनिल बोर्दिया की स्मृति में सातवें व्याख्यान का आयोजन। यह आयोजन दूसरा दशक, संधान, उरमूल ट्रस्ट और समिति ने संयुक्त तत्वावधान में हुआ। व्याख्यान का विषय था- बदलते समय में शैक्षिक आंदोलन। मुख्य वक्ता थे प्रथम एजुकेशन फाउण्डेशन के अध्यक्ष डा. माधव चवान।

शख्सीयत

८ नवम्बर २०१९ को सुप्रसिद्ध समाजसेवी, सुधीर माथुर से मुलाकात का आयोजन शख्सीयत कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया। मीडियाकर्मी श्रीमती अंशु हर्ष ने श्री सुधीर माथुर से बातचीत की।

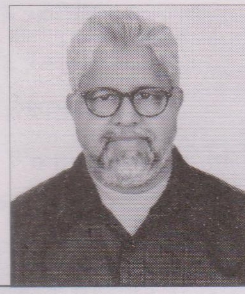
२९ नवम्बर, २०१९ को समिति में शख्सीयत का दूसरा कार्यक्रम आयोजित हुआ। दुनिया में महिलाओं की पुरजोर पैरवी करने वाली विश्वविख्यात कार्यकर्ता कमला भसीन ने विस्तृत व्याख्यान दिया। व्याख्यान के बाद १०० से अधिक संभागियों के साथ सवाल-जवाब भी हुए।

श्यामवन संस्था

२६-२७ दिसम्बर, २०१९ को श्यामावन संस्था से ३४ बच्चों का एक समूह समिति में आया। बच्चों के साथ रोचक बातचीत हुई और बालकों द्वारा गीतों एवं योग नृत्य की प्रस्तुति की गई।

अंतराष्ट्रीय बालिका दिवस

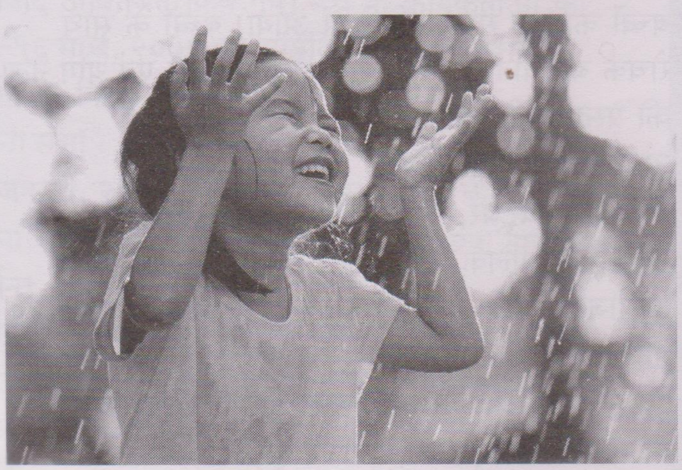
११-१२ अक्टूबर, २०१९ को **गर्ल्स नॉट ब्राइड** द्वारा अंतराष्ट्रीय बालिक दिवस का आयोजन किया। इस आयोजन में राज्य के विभिन्न जिलों से आई लगभग १४० बालिकाओं ने भाग लिया। इससे पहले **१२-१३ फरवरी** एवं **२२ सितम्बर** और अभी हाल ही में **१७ दिसम्बर** को भी **गर्ल्स नॉट ब्राइड** के आयोजन हुए। ❑



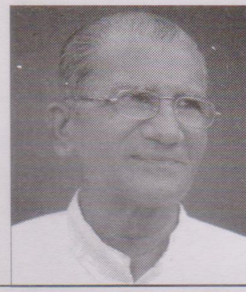
हूबनाथ

नया साल मुबारक

तारीख
पंचांग में फंसा अंक नहीं
न वक्त घड़ी की सूइयों का
ज़रखरीद गुलाम
इनके वजूद की खातिर
सूरज को जलना पड़ता है
चलना पड़ता है पृथ्वी को
अनंत अनजान पथ पर
अनवरत
ऐसे में कोई साल
लेटे लेटे या बैठे बैठे
नया हो जाए



बड़ी ख़ूबसूरत ख़ुशफहमी है
जो खोए हैं
उन्हें ख़ुशफ़हमी मुबारक
जो तैयार हैं
ख़ुद को खोने
और जग को पाने के लिए
उनके साथ मिलकर
चलो बनाते हैं
मनाते नहीं
एक नया कोरा महकता
इज़्ज़तदार साल
सिर उठाकर
मुट्ठियां तानकर
मुस्कुराते हुए
सिर्फ अपने लिए नहीं
पूरी कायनात के लिए
और निर्मल निश्छल निर्भय मन से
सबसे कहते हैं
यह नया साल मुबारक हो
हम सबको ❑



लाभुभाई ग. पटेल

एक थे जुगतराम भाई

बापू के चिन्तन और बुनियादी तालीम के अग्रणी जुगतरात भाई ने बापू के काम में पूरा जीवन समर्पित किया था। बिल्कुल अंधकार में जी रहे आदिवासियों को 'मनुष्य' बनाने वाले जुगतराम भाई विरले थे। साधनहीन होने पर भी प्रकृति से प्राप्त संपदा को शिक्षा साधन के रूप में प्रयोग करना उनकी मौलिकता थी। उनकी 'बालबाड़ी' के रूप में खोली गई पाठशालाएं उद्योग प्रधान थीं। जहां बालक सच्चे अर्थों की शिक्षा पाते थे। आज भी 'बेड़छी' में चल रहे 'खादी' उद्योग को जुगतराम भाई ने सार्थक बनाया था। प्रस्तुत आलेख को पढ़कर आनन्द ले सकेंगे पाठक सुधीजन। सं.❑

जुगतरामभाई ने हिरन-खरगोश के बच्चे से आदिवासी बच्चों को घास-फूस की झोपड़ियों में से ढूंढकर उठाया और अपने द्वारा चलाई गई निराले ढंग की 'बालवाड़ी' में शिक्षा देकर वनवासी अंधेरे को हटाना शुरू किया। १९२४ से बालवाड़ी के रूप में निकली यह शिक्षा-गंगोत्री आज स्नातकोत्तर शिक्षा देने वाली बेड़छी-जिला सूरत की गांधी विद्यापीठ के रूप में अनेक धाराओं में बहकर सारे गुजरात के आदिवासी और सुसंस्कृत समाज को भी भिगोकर पावन कर रही है।

आदिवासियों के जीवन में रहा, जरूरी चीजों का अकल्पनीय तीव्र अभाव और कड़ा परिश्रम उनकी मजबूरियां थीं। उसे सुसंस्कृत बनाकर स्वैच्छिक सादगी और फलदायी मेहनतकश जीवन में पलटना जुगतराम भाई के लिए पहला कर्त्तव्य बना। यहां स्वावलंबी तरीके से अन्न और वस्त्र की पूर्ति करना था। अत:- बाल शिक्षा के साथ वयस्कों में खादी और खादी कार्यकर्त्ताओं का निर्माण करने तथा कृषि कार्य सिखलाने के कार्य से आरंभ हुआ।

जो लोग समाज के छोटे-बड़े शोषण पर निभते हैं, उनके लिए खादी चर्चित मुद्दा बनती है। यहां तो खुले बदन को ढांपने के लिए एकमेव रास्ता था। अत: खादी निर्माण का काम जंगल में लगी आग की भांति चल निकला। खादी के वस्त्र ही ने आदिवासियों का नंगापन हटाया।

जुगतरामभाई के उस काम के बारे में महादेव देसाई ने लिखा है: १९२७ की सिल में खानपुर में रानी परज आदिवासियों का बहुत बड़ा सम्मेलन था। गांधीजी ने खुद उसमें शरीक होने के लिए कड़ी शर्त रखी थी, कि सम्मेलन के स्वागत समिति के जो १०-१५ सदस्य हों, उन्हें अपने ही काते सूत की खादी पहननी होगी। सुनकर जुगतरामभाई को कुछ हंसी आ गई। बोले:'बापू यदि सारे सम्मेलन में भी कहीं १०-१५ लोग मिल के कपड़े पहने हुए आपको दिख जायें तो मेरा काम नापास कर दीजियेगा।' और हुआ भी यही। जुगतरामजी के उस सम्मेलन में स्वागत समिति के आदिवासी सदस्य १०-१५ नहीं, पूरे ११०० थे जिन्होंने बापू की शर्त का कड़ाई से

पालन किया था। बापू ने जब यह देखा तो उनके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। उनकी आंखों में कुछ पानी-सा चमकार और जुगतरामभाई को अपने नजदीक खींचकर उनकी पीठ को सहलाने लगे। भावाभिव्यक्ति में शब्द नाकाम रहे।



आदिवासियों के लिए शराब पीना आम बात थी। मजदूरी के जो कुछ पैसे मिलते थे, उससे रोटी नहीं, शराब खरीदी जाती थी। इस विस्तार में रविशंकर महाराज और जुगतरामभाई ने क्या-क्या काम किये, एक बड़ी पुस्तक में भी लिखना आसान नहीं। समझदार आदमी भी बीड़ी जैसा व्यसन छोड़ नहीं सकता है। यहां तो हम इतना ही कहेंगे कि इतने बड़े सम्मेलन में शामिल रहे बहुत बड़े भाग के लोग शराब को छोड़ चुके थे। तीर-कमान छोड़कर कुदाल, फावड़े थाम कर पर्वत की ढलानों में खेतीबाड़ी करने लग गये थे। सारी दुनिया से नफरत करने वाले और तीर-कमान से बात करने वाले इन आदिवासियों को गांधी वाले ही अपने लोग लगते थे।

धारा तहसील के भीतरी गांव बेड़कुवा के छ: सात आदिवासी बेड़छी के बुनाई शिविर में छ: महीना तालीम लेकर अपने गांव वापस जा रहे थे। जाते वक्त उन्होंने जुगतरामभाई से, कहीं से करघा, दिलवाने की मांग की। जुगतरामभाई का 'स्वावलंबन' कोई कोरी बातों का नहीं होता था। बोले तुम तो जंगल ही में रहते हो। मनपसंद बढ़िया लकड़ी काटकर अपने हाथ से करघा बना डालो और लगो बुनने। बेड़कुआ के रम्या से बने रमेशभाई कहते हैं; हमें उनकी बात जंच गई। आखिर में चेला भी किस गुरु का था। कई करघे बना डाले और संयोग आने पर जुगतरामभाई से मिला तो उनसे कहा 'आपकी वेड़छी तो खादी का विद्यालय है। खद्दर का व्यापक काम चलता है, फिर भी उससे तीन गुना अधिक खादी की पैदावार पर हम पहुंचे हैं। आप स्वयं आकर देख लीजिये कि आपकी शिक्षा पाकर आये हमारे लड़कों ने हमारे झोंपड़ों को और हमारे पाशवी जीवन को उखाड़कर कहां फेंक दिया है।

खादी के ऐसे मंत्र के साथ साथ स्वराज का मंत्र भी यहां गूंजता था। समय आने पर यही से सत्याग्रह की टोलियां निकलती रहीं। पूरे भारत में केवल वेड़छी की आदिवासी महिलायें स्वातंत्र्य सेनानी बनी थीं।

यहां बुनियादी शिक्षा का जो काम चला, इसके परिणामस्वरूप आज पूरे दक्षिण गुजरात में २५० से अधिक शिक्षा संस्थाएं कार्य कर रही हैं।

कोई एक क्षेत्र में बंध जाने वाले जुगतरामभाई नहीं थे। उन्होंने खादी, खेती, स्वच्छता, शिक्षा, साहित्य, सांस्कृतिक प्रवृत्तियां : जिस-जिस विषय को छुआ, बेमिसाल काम कर दिखाया। गुरुदेव टैगोर के कई गीतों को उन्होंने गुजराती में उतारा है, तो कविवर के वही भाव गुजराती में निखर रहे हैं। मिसाल-'ना दो तो प्रभु भले न दे जो, दर्शन तमारां, आने आ जन्मे मारा; मिलन हज नथी थयुं तमारूं एना भणकारा, रहेजो अंतरमां मारा।' बहुत कम ही लोग जानते होंगे कि बहुत प्रसिद्धि प्राप्त यह भजन जुगतरामभाई की कलम से टपका है।

१९४३-४७ आंबला ग्राम दक्षिणा मूर्ति के पाठ्यक्रम में मैंने मुरब्बी मनुभाई पंचोली से जुगतरामभाई रचित काव्य 'कौशिका ख्यान' पढ़ा है। आरंभ की चरित्र वर्णन की कुछ पंक्तियों से उनकी काव्य शक्ति का अंदाजा लगाया जा सकता है-'कौशिक ब्राह्मण-मता तपोधन, तपी वाणी तन कीछुं कासु जेवुं: आंख मांहे आग-गालमां विराग, क्रूरे शाप बाग मुख पासे करे।' बगुली का नजर मात्र से भस्म करने वाली योग्य शक्ति को प्राप्ति करने वाला कौशिक सच्चा ज्ञान एक पारसी स्त्री से पाता है। तुम्हारा कर्त्तव्य अपने अंधे मां-बाप की सेवा करना है। ऐसे योग के लफड़ों को छोड़कर अपने मां-बाप को संभालो।

साधनहीन होने पर भी प्रकृति प्राप्य संपदा में से शिक्षासाधन गढ़ लेने की उनकी मौलिकता आश्चर्य मिश्रित हर्ष-विभोर कर देती थी। उनकी बालवाड़ियों में ऐसे साधनों का जखीरा एक संग्रहस्थान की भांति देखने को मिलता था। बालवाड़ी के गीत वे स्वयं बनाते। कुहनी

तक की बांहों वो टूटके और बिना कालर के सफेदी से चमकते स्वच्छ कमीज और घुटने तक धोती पहने, छोटे-छोटे बच्चों के साथ तालियां बजाते हुए, नाचते हुए, गाते हुए: 'बंदो दौड़े-दौड़े, नाचे नाचे, कूदे-कूदे रे , थोभ नहीं रोक नहीं खेने कुहवा हेने रे' स्वयं स्फुरित, उल्लासमय गीत गाते हुए उनको जिन्होंने देखा है, तो उसे लगा है, 'मूछों वाली मां' कहे जाने वाले बाल शिक्षा के प्रणेता गिजुभाई बधेका की प्रतिमूर्ति नाच रही है। गिजुभाई की मूंछों से इनकी मूंछों का अव्वली साम्य था। करीब-करीब चेहरे कद से भी। बुनियादी शाला-महाशालाओं में जुगतरामभाई के लिखे गीत फैल गये थे। उनके लिखे नाटक भी मंचित किये जाते थे।

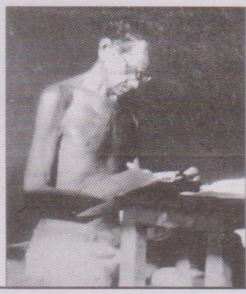
जिस चीज को उन्होंने अपनी विवेकपूर्ण दृष्टि से देखा-परखा और फिर गढ़ा तो उसे वेड़छीकरण का नाम दिया जाता था। यहां तक की झाडू भी वेड़छीवाली और सुधारी हुई टोकरियां भी वेड़छीवाली होती थीं। आगे जाकर बारडोली के सुरुचि आश्रम में नारायणभाई देसाई और मोहनभाई पारीक की जोड़ी ने कई तरह के सुधारे हुए साधन वर्कशॉप से निकाले।

आश्रमी जीवन आदर्शमय जीवन तब बनता है, जब जीव के प्रत्येक अंगों को वैज्ञानिक व विवेकबुद्धि से परखा जाय और आचरण किया जाये। ऐसे उनके तप:युत और चिंतनशील जीवन के परिणामस्वरूप हमें उनका ग्रंथ आत्मरचना और आश्रमी केळीवणी मिला है। ग्रंथ के पुरावेचन में गांधीजी ने लिखा है : 'आश्रमी केळीवणी नाम के उनके ग्रंथ के कुछ प्रकरण मैं पढ़ गया हूं। उनकी भाषा सरल, सुन्दर है एवं गांव के लोग भी आसानी से समझ सकते हैं। आश्रमी जीवन से संबंधित छोटी-बड़ी सभी बातों को लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से रखा है। उन्होंने बताया कि आश्रमी जीवन सादगी से भरा होने पर भी उसमें ही सच्ची कला और जीवनानंद रहा है। यह (मेरी) परीक्षा कितनी सही है यह पढ़ने वालों को पुस्तक साद्यंत पढ़कर देख लेना। जीवन के हर पहलू पर सोचने की उन्होंने जो रस्म सिखाई है, वह बहुत उपयोगी है। और ग्रंथ कभी काल-कलवित नहीं होते। जुगतरामभाई के जीवन कार्य को चित्रित करने वाला नारायण महादेवभाई देसाई लिखित ग्रंथ- 'वेड़छीनो वड़लो' (वटवृक्ष वड़ेछी का) भी बड़ा प्रेरणादायी व रोचक पुस्तक है।

करीब ४० साल तक उन्होंने १५-१५ दिन के कई बालवाड़ी शिविर चलाये और बालशिक्षकों को प्रशिक्षित किया। पंजाब-राजस्थान से लेकर महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश से आसाम-उड़ीसा तक की संस्थाएं अपने शिक्षक-शिक्षिकाओं को उसमें तालीमार्थ भेजती रहीं। इस प्रकार के चार शिविरों की शिक्षा पूर्ण करने वालों को पूर्ण तालीम प्राप्ति का प्रमाण पत्र दिया जाता था। ऐसे शिविरों में खेती, पाक शास्त्र, विज्ञान, कला, संगीत, मिट्टी काम, खेल-कूद, स्वच्छता, नाटक आदि के दिन-विशेष भी मनाये जाते थे और तत्विषय के तज्ज्ञों को निमंत्रित किया जाता था। ऐसे तज्ज्ञों के गृहमंडल में भी जुगतरामभाई सूर्यरूप दिखते थे।

जुगतरामभाई ने लिखा है कि 'बच्चों के श्रम उद्योग की सच्ची स्थिति तो यह है कि बड़ों के कामों में बच्चे स्वाभाविक प्रेरणा से संशयरूप में शरीक हों। अपने घरों में बच्चे यही करते हैं कारीगरों के बच्चे इस प्रकार तालीम पाते हैं। उन पर कुल जिम्मेवारी का बोझ नहीं डाला जाता। संस्थाओं में जहां कहीं शिक्षक खड़े रहकर काम कर रहे बालकों पर मुकादमी करता है, वहां उद्योग का शैक्षिक महत्व समाप्त हो जाता है। जुगतरामभाई ने 'सुन्दरपुर की शाला का प्रथम दिन' लिखकर बताया है कि शिक्षा संस्थाओं में प्रेम, सौहार्द, कार्यकुशलता, लगन,उत्साह और स्वच्छता का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है।

आखिर में वेड़छी के बारे में गांधीजी के प्रकट अभिप्राय को देखें- 'यहां की पाठशाला उद्योग प्रधान है। अक्षरज्ञान तो बच्चे खेल ही खेल में प्राप्त कर लेते हैं। हर कहीं जुगतरामभाई का दृष्टिवंत स्पर्श स्पष्ट दिखाई देता है। उनके जैसा कौशल शायद हममें भी नहीं। उनकी तरह का प्रेम जहां कहीं बच्चों को प्राप्त हो सके तो पूरे देश में ऐसी पाठशालाएं बन सकती हैं। इसी से कृषि प्रधान देश के बच्चों को सच्ची शिक्षा दी जा सकती है। यहां की पाठशाला में बच्चे अच्छे संस्कार और शुद्ध आचार सीखते हैं। आरोग्य के नियम जानते हैं। स्वाश्रयी होने के साथ स्वातंत्र्य का मंत्र आत्मसात करते हैं। ❑



एक थे बंशीधरजी

बंशीधरजी भारत के सुप्रसिद्ध बाल शिक्षा शास्त्री थे। वे गिजुभाई के जमाने में उनसे सीधे जुड़े हुए भी थे और मारीया मोन्तेस्सोरी और गिजुभाई के शिक्षा दर्शन से अनुप्राणित भी हुए थे। आज बंशीधरजी का नाम जानने वाले भी बहुत कम लोग बच गये हैं। वे चंडीगढ़ के पास हरियाणा में कहीं शिक्षण करते हुए जोधपुर आ बसे थे। जोधपुर में उन्होंने बाल निकेतन की स्थापना की थी। बाल निकेतन उन दिनों बाल शिक्षा के क्षेत्र में एक नवाचारी शिक्षा शाला के रूप में स्थापित हुआ था। उन दिनों गठित हुए नूतन बाल शिक्षण संघ का भी बाल निकेतन पर सीधा प्रभाव था। उस शिक्षण धारा में केवल समर्पित लोगों के लिए स्थान और उन लोगों के लिए स्थान था जिनका जीवन पूरा बालकों को ही निवेदित था। बंशीधरजी ऐसे ही शिक्षक थे। वे भाईसाहब के नाम से जाने जाते थे। जीवन उनका जैन मुनि की तरह अनुशासित था। शिक्षा सिद्धान्तों में बंशीधरजी को कहीं कोई समझौता स्वीकार्य नहीं था। बालकों का भावी जीवन ही उनके आराध्य देव की उपासना थी। यहां प्रस्तुत है उनके चिंतन मनन की एक बानगी। सं.❑

प्रसिद्ध शिक्षा विशेषज्ञ डॉ. मारिया मोन्तेस्सारी ने अपनी एक पुस्तक में एक कहानी लिखी है।

उन्होंने एक बार रोम के पार्क पिनशियन गार्डन में करीब डेढ़ वर्ष के एक सुंदर, हंसमुख बालक को देखा, जो कि एक छोटी से बालटी को, पास पड़े हुए कंकड़ों से भर रहा था। उसके पास ही चुस्त पोशाक पहने एक आया खड़ी थी, जो प्रकट रूप में उसे अति प्यार करती थी और यह समझती थी कि वह उसे बड़ी सावधानी से रखती है। चूंकि घर जाने का समय हो गया था, इसलिये आया बच्चे को बड़े धैर्य के साथ, इस काम को समाप्त करने के लिये प्रेरित कर रही थी और उसे गाड़ी में बिठाना चाहती थी। अपनी प्रेरणाओं द्वारा बच्चे पर कोई प्रभाव न पड़ता देख उसने खुद ही बालटी को कंकड़ों से भर दिया और ख्याल किया कि उसने बच्चे की इच्छा को पूरा कर दिया है। इसके बाद उसने बच्चे और बालटी को गाड़ी में रख दिया। आया के ऐसा करने से बच्चा जोर-जोर से रोने लगा। बच्चे की चीख सुनकर तथा अन्याय एवं अत्याचार के प्रति उत्पन्न हुए विरोध के भावों को उसके चेहरे पर देख कर मारिया मोन्तेस्सोरी सहम गई। निस्संदेह इस प्रहार से उस बच्चे की कोमल बुद्धि पर भारी आघात हुआ। वह बालक बालटी को किसी से भरवाना नहीं चाहता था, बल्कि खुद इस काम को करना चाहता था, ताकि अपनी मांसपेशियों की कसरत कर सके तथा फासले का अंदाजा करके आंख का व्यायाम भी कर सके। इसके अलावा तर्क-वितर्क करके वह अपनी बुद्धि का प्रयोग और अपने कार्य का निर्णय करके इच्छाशक्ति को उत्तेजित करना चाहता था।

इस प्रकार आत्मविकास ही उसका एक मात्र अज्ञात उद्देश्य था, केवल बालटी को कंकड़ों से भरना नहीं। उसका मुख्य हेतु असलियत मालूम करना था। हो सकता है कि बालटी के भर जाने पर भी वह शायद उसे फिर खाली करता। और इस क्रिया को तब तक जारी रखता जब तक उसकी अन्तरात्मा संतुष्ट न होती। यह आत्म-तुष्टि की भावना ही थी जिसने कुछ क्षण पहले बालक के चेहरे को गुलाब के फूल के भांति खिला रखा था। लेकिन उस आया ने, जो उसे प्यार करती थी, उसकी बालटी में कंकड़ भर कर उसे दु:खी बना दिया।

बालक से व्यवहार करते समय पालक इस आया से भी अधिक अज्ञानता दिखलाते हैं। पालकों को लगता है कि-

१. बालक की प्रवृत्ति भी उनके समान बर्हिमुखी होती है। उसे भी बाह्य पदार्थों से लगाव होता है। उसे भी अपना मन बहलाने के लिये अनेक तरह के खिलौने, इनाम, मान-सम्मान या कोई अन्य वस्तु चाहिये। वास्तव में बालक तो शिक्षा से दूषित होने से पहले शक्ति सम्पन्न बनना चाहता है, अपना विकास करना चाहता है।

२. बालक की इच्छा और उद्देश्य भी वही होने चाहिये जो पालकों के हैं। यदि बालक वयस्क के जीवन दृष्टिकोण को नहीं अपनाये तो इसका अर्थ है कि बालक की समझ अभी अपरिपक्व है (वह दूषित स्वभाव वाला है) और अपराधी (अपरिपक्व) है।

शिक्षा का काम इन खराबियों को निकालना और इन्हें दुबारा नहीं पनपने देना है। यहां पालकों का सारा ध्यान बालक को प्रकृति से मिले गुणों का पोषण करने की बजाय सभी बालकों को शिक्षित करने की एक निश्चित प्रक्रिया से गुजारने पर ही होता है। जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो सके। पालक यह मानकर चलते हैं कि वे मानसिक, नैतिक और अध्यात्मिक रूप से परिपक्व हो गये हैं। वे अपने अविकसित विकृत व्यक्तित्व को ही पूर्ण मानकर बालकों पर अपनी पहचान छोड़ने और अपना रौब जमाना चाहते हैं। वे अपने विचारों को बालक पर लादते हैं। दूसरे शब्दों में वे बालकों के प्रति मताग्रह की दृष्टि (Dogmatic approach) रखते हैं। वे यह आशा करते हैं कि बालक बिना सोचे-समझे और विचारे यंत्रवत उनके आदेशों का पालन करता रहे। वे यह बात भूल जाते हैं कि वे स्वयं भी गुमराह शिक्षा का शिकार हैं जिसने उनके जीवन दृष्टिकोण को झूठा (संकुचित) बना दिया है। उन्हें यह नहीं पता कि वे इस प्रकार की आज्ञाकारिता की अपेक्षा बच्चों से रखकर स्वयं ही शिक्षा की गलत विचारधारा के प्रति अपनी वफादारी प्रकट कर रहे हैं।

मताग्रही सोचता है कि 'X' वस्तु मुझे अच्छी लगती है इसलिये यह सभी को अच्छी लगनी चाहिये। तो अगर 'Y' बात मुझे सत्य लग रही है अत: यह सभी को सत्य ही मालूम पड़नी चाहिये। यदि 'Z' वस्तु मेरे लिये सुन्दर है तो सभी के लिये यह सुन्दर ही होनी चाहिये। मताग्रही दृष्टि का अभिप्राय है कि एक व्यक्ति द्वारा नियम बनाना और आज्ञा जारी करना दूसरे व्यक्ति का कर्त्तव्य है इन सबको मानना और उसके अनुसार यंत्रवत चलना।

मताग्रहवाद केवल इतना ही नहीं कहता कि बालकों को क्या करना चाहिये अपितु ये तो यहां तक मजबूर करता है कि बालक क्या देखें, क्या महसूस करें, क्या सोचें, किस पर विश्वास करें और ध्येय क्या रखें। मताग्रह भिन्न-भिन्न आज्ञाएं और छोटे-छोटे आदेश देता है और ये बालकों को उनकी अपनी समस्यायें सुलझाने में होने वाली असुविधाओं से बचा लेता है। लेकिन जहां तक हम अपनी उच्च शक्तियों को यंत्रवत प्रयोग में लाते हैं यथार्थ में उसका उपयोग नहीं करते। यदि किसी बात पर हमने इसलिये विश्वास कर लिया क्योंकि दूसरे ने उस पर विश्वास करने के लिये कहा है, तो वास्तव में हम उस पर विश्वास नहीं करते। हम जो कुछ सोचते हैं वह दूसरों द्वारा हमें बताया गया है तो वास्तव में हम नहीं सोचते। अगर हम कुछ नतीजा निकालते हैं वह किसी और का बताया हुआ है, तो वास्तव में हमने अपनी तर्क-शक्ति को काम में नहीं लिया है। अगर दूसरों के कहने पर हम किसी चीज की प्रशंसा कर रहे हैं तो हम अपने हृदय से उसकी प्रशंसा नहीं कर रहे हैं।

जब कभी किसी की उच्च शक्तियां काम में आती हैं तो उस समय चेष्ठा का उद्‌गम उसके अंदर से होता है। यदि वह उद्‌गम उसका अपना नही किसी और का है तो फिर वह व्यक्ति चाहे कितना ही कार्य में सलंग्न क्यों ने हो,

वास्तव में वह अपनी उच्चतर शक्तियों को काम में नहीं ले रहा। वह तो मशीन की तरह अपनी शक्ति लगा रहा है, एक जीवित आत्मा के समान नहीं। हमारी नैसर्गिकता और ऊर्जा की जितनी क्षति मताग्रह से होती है उतनी किसी और से नहीं। जैसे छोटे से बीज में वटवृक्ष छिपा होता है, उसी प्रकार मनुष्य में विशाल व्यक्तित्व सन्निहित है। लेकिन जब मनुष्य की उच्च शक्तियां काम में नहीं आती तो उसका विकास रुक जाता है। जो शक्तियां विकास के लिये छटपटाती थीं अब उल्टे मार्ग पर चलना शुरू कर देती हैं।

मताग्रह का दबाव बालक की उच्चतर शक्तियों को खिलने नहीं देता। उसके चलते उसकी कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता, तार्किक क्षमता, विचारशीलता, दया करुणा, प्रेम, निर्भयता, नैतिकता दफन हो जाती है। वह आत्म-नियंत्रण के बजाय बाहरी दबाव से नियंत्रित होता है। उसका जीवन अध्यात्मिक शून्य हो जाता है। मनुष्य की सारी शक्तियां काम में लाने से ही विकसित होती है। जैसे हम चलकर ही चलना सीखते हैं और बोलकर ही बोलना सीखते हैं। इसके अलावा इन्हें सीखने का कोई और मार्ग नहीं है।

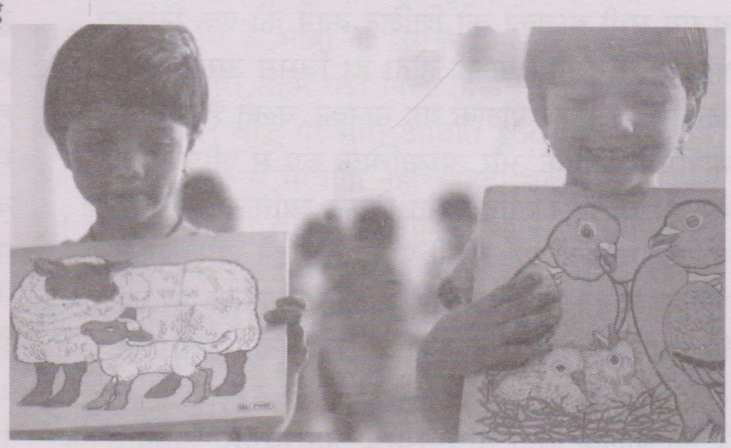
हर बालक अपने आप में विशेष होता है और उसमें कला, शिल्प-व्यवसाय, पेशे, खेल आदि से संबंधित कुछ नैसर्गिक गुण होते हैं। यदि इन गुणों को उचित पोषण मिले तो बालक का व्यक्तित्व खिल उठता है। लेकिन बालक को यदि उसकी स्वाभाविकता के विपरीत धकेला जाता है तो उसकी कल्पनाशीलता कुंद हो जाती है, तर्कशीलता कमजोर रह जाती है, विचारों की उर्वरकता समाप्त हो जाती है, वह मूल्य विहिन हो जाता है और वह केवल वही कर सकता है जो उसे कहा जाये।

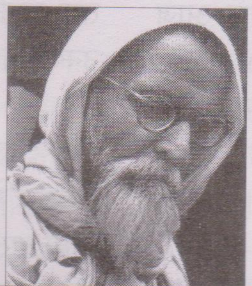
परिणामत: मताग्रह जहां तक हमें अपनी शक्तियों को काम में लाने की आज्ञा देता है, वहां तक यह हमें पूर्ण रूप से एक मशीन के समान बना देता है। जिन बुराइयों पर हमने विचार किया है। वे सब मुनष्य के उच्च जीवन में हस्तक्षेप करने वाले मताग्रह के कारण पैदा होती हैं।

सच्चे अर्थ में अनुशासन वह है जिसे मनुष्य खुद बिना किसी दबाव के अपने ऊपर लागू करता है। इसके विपरीत आज्ञाओं द्वारा जबरदस्ती से ऊपर से लादा गया अनुशासन जिसमें सब सुव्यस्थित यंत्रवत काम करते नजर आने पर भी वह मनुष्य को मशीन बना देता है। व्यक्ति अपनी आदत की गुलामी के कारण दिये गये काम को छोड़कर किसी दूसरे काम के लिये बिल्कुल नाकाम बन जाता है। वह कठपुतली की तरह दूसरे आदमी की आज्ञाओं और इशारों पर नाचता है। दूसरों की इच्छा शक्ति पर काम करते रहने से वह अपनी इच्छा शक्ति खो बैठता है।

फलत: उसका व्यक्तित्व निर्बल हो जाता है। बहुधा देखा भी जाता है कि मताग्रह के प्रभाव में पला हुआ बालक आजाद होने पर आसुरी प्रवृत्तियों में फंस जाता है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि कुछ तो उसकी उच्च शक्तियों के विकास को रोका गया और कुछ प्रारम्भिक जीवन में की गई सख्ती के विरुद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया और कुछ आसुरी जिज्ञासा।

मानव जाति की आध्यात्मिक प्रगति, भौतिक प्रगति से कम हुई है। आध्यात्मिक प्रगति और भौतिक प्रगति में पहले की अपेक्षा अंतर भी बहुत बढ़ चुका है। इसका कारण है कि बालकों की शिक्षा-दीक्षा का काम ऐसे लोगों के जिम्मे रहा है जो मताग्रही हैं। कोमल मन पर इन लोगों के दूषित विचार पीढ़ी दर पीढ़ी तक पहुंचते जाते हैं। बाल्यावस्था और युवावस्था में मताग्रह अपना सबसे अधिक दबाव तथा विनाशक प्रभाव डालता है। बालक और युवा पर व्यवस्थित रूप से पड़े इसी मताग्रही दबाव को हम शिक्षा कहते हैं। ❑





विनोबा भावे

विनोबा भावे का शिक्षा चिंतन

ज्ञान और कर्म के दो टुकड़े

वर्तमान शिक्षा यानी पढ़ना-लिखना और कुर्सी पर बैठकर हुकम चलाना। विद्या सीखने के मानी काम छोड़ना। पढ़े-लिखे लोगों को काम करने में शर्म मालूम होती है। यह बिलकुल खतरनाक हालत है कि समाज में देह और बुद्धि अलग-अलग हो। भगवान ने सबको हाथ और बुद्धि दोनों दिये हैं। इसलिए जो विद्वान हों, वे कर्मनिष्ठ भी हों और जो कर्मनिष्ठ हों, वे विद्वान भी हों। इस तरह से ज्ञान और कर्म, विद्या और परिश्रम दोनों अगर जुड़ जायेंगे तो देश की उन्नति होगी और देश एकरस होगा।

आज भारत का दुर्भाग्य यह है कि यहां ज्ञान और कर्म के बीच मेलजोल नहीं रहा। काम करनेवालों के पास ज्ञान नहीं पहुंचता और जिनका बौद्धिक विकास हुआ है वे काम नहीं करते हैं। इसलिए चिंतन को बुनियाद ही नहीं मिलती। ऐसा राहु-केतु का समाज आज है। एक को केवल सिर है, उसको हाथ-पांव नहीं, और दूसरे को हाथ-पांव हैं, परन्तु सिर नहीं। ईश्वर की ऐसी योजना होती तो वह सबको सिर और हाथ-पांव दोनों क्यों देता? कुछ लोगों को केवल सिर-ही-सिर और कुछ लोगों को केवल हाथ-पांव ही दे सकता था। परन्तु उसकी योजना है कि सबका बौद्धिक और शारीरिक विकास दोनों हो। जैसे शब्द और अर्थ दोनों भिन्न होते हुए भी एक साथ ही रहते हैं वैसे ज्ञान और कर्म एक साथ हो जाना चाहिए। ये दोनों कपड़े के ताना-बाना जैसे हैं, दोनों मिलकर ही जीवन का वस्त्र बनता है। परन्तु हमारे यहां तो लिखा-पढ़ा मनुष्य श्रेष्ठ और परिश्रम करने वाला नीच माना जाता है। गिबन ने लिख रखा है कि उत्पादक परिश्रम से घृणा करने के कारण रोम की सभ्यता का ह्रास हुआ।

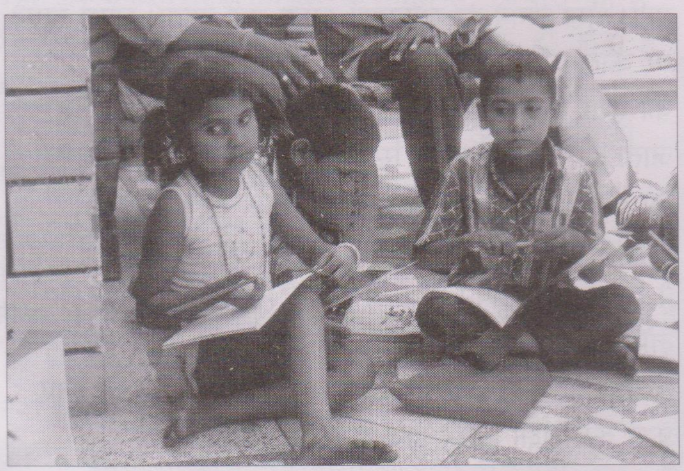
बीकॉम या बेकाम?

विद्यार्थी अपने जीवन में कोई काम नहीं करते, सेवा नहीं करते, सिर्फ किताबों का अध्ययन करते रहते हैं। इससे वे ठण्ड बर्दाश्त नहीं कर सकते, गर्मी सहन नहीं कर सकते और वर्षा में खट भी नहीं सकते। खेतों में काम करने में अक्षम हैं। उनसे उद्योग-धन्धे की भी कोई आशा नहीं है। लोग भी कहते हैं कि ये पढ़े-लिखे लोग 'बी-कॉम' नहीं, 'बेकाम' बन जाते हैं। उनको हजार रुपये दे दो, पर वे व्यापार का काम नहीं कर सकते, उलटे सालभर में वे एक हजार का पांच सौ कर लायेंगे। इस प्रकार वर्तमान तालीम में न व्यावहारिक ज्ञान मिलता है और न पारमार्थिक ज्ञान मिलता है। उसका वास्तविकता के साथ कोई संबंध नहीं। भूख लगने पर व्याकरण खाया नहीं जाता। प्यास लगने पर काव्य पीया नहीं जाता। ऐसी स्थिति में आज के शिक्षितों की दशा धोबी के कुत्ते जैसी 'न घर का, न घाट का', हो जाती है। उनकी दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए जनता का कर्तव्य है कि वह शिक्षण को अपने हाथ में ले ले। इंग्लैण्ड में शिक्षण सरकार के हाथों में नहीं है, वहां की प्रजा ने शिक्षण को अपने हाथों में रखा है। इसलिए इंग्लैण्ड के लोग स्वातंत्र्य-प्रेमी हैं। हमारे यहां सारी-की-सारी तालीम सरकार को सौंप दी गयी है। आजाद दिमाग रखने के लिए प्रजा को शिक्षा अपने हाथ में रखनी चाहिए।

इस विद्या का एक और पणिाम यह है कि आज के शिक्षित लोग 'मिस्टिक एक्सपीरियन्स' (गूढ़ अनुभव) को समझ नहीं पाते। उनके लिए वह सारा ढक गया है। यह आवरण **हिरण्मयेन पात्रेण** जैसा है। यह विद्या कहलायी जाती है, लेकिन वास्तव में है अविद्या। सूर्य के प्रकाश में सारी तारिकाएं ढक जाती हैं और पेड़-पत्थर आदि सारी सृष्टि खुल जाती है। सूर्य इस सृष्टि को हमारे सामने खोलता है, लेकिन असंख्य तारिकाओं को ढांकता है, जिनके सामने वह स्वयं बिलकुल नाचीज है। लेकिन सूर्य डूबते ही सारी तारिकाएं खुल जाती हैं। आज की विद्या भी भौतिक चीजों को खोलते हुए गूढ़ (आध्यात्मिक) अनुभवों को ढांक देती है।

परीक्षा–नौकरीलक्षी शिक्षा

कहते हैं आजकल चारों ओर शिक्षा का विस्फोट हो रहा है। विद्यार्थियों के दंगे बढ़ गये हैं। तो मैं विनोद से पूछता हूं कि 'दंगे किनके हैं? विद्यार्थियों के या परीक्षार्थियों के? विद्यार्थी तो बाबा है, जो रोज अध्ययन करता है। परन्तु आज का विस्फोट इसलिए है कि वे नौकरी चाहते हैं। पिछले सालों में शिक्षितों की संख्या बढ़ी है। वे सब नौकरी चाहते हैं और नौकरी की गुंजाइश है नहीं। दस-बारह परिवारों के पीछे आज एक सरकारी नौकर है। इसलिए मैंने कई बार कहा है कि सरकार कांग्रेसी है, परन्तु कम्युनिस्ट बनाने के कारखानें खोल रही है। कॉलेजों से निकलकर असंतुष्ट विद्यार्थी कम्युनिस्ट बनते हैं। 'असंतुष्टः द्विजः कम्युनिस्टः' जो शिक्षित असंतुष्ट होता है वह कम्युनिस्ट बनता है। ऐसी बेकार तालीम अभी



तक चली है। इसलिए विद्यार्थियों को सोचना चाहिए कि उनके अपने जीवन का 'रोल' क्या होगा?

आज तो विद्यार्थी विद्यार्थी नहीं रहे, परीक्षार्थी हो गये हैं। उन्हें ३३ प्रतिशत अंकों पर पास कर देते हैं। वास्तव में ज्ञान तो शत-प्रतिशत होना चाहिए। सच्चा ज्ञान कभी भुलाया नहीं जा सकता। आज 'ज्ञान' नहीं दे रहे हैं, किसी तरह 'जानकारी' दे देते हैं। आज के शिक्षण में स्वयं ज्ञान हासिल करने की शक्ति प्राप्त हो, यह उद्देश्य ही नहीं। जो भूलने जैसी विद्या है, वह विद्या ही नहीं। क्रियायुक्त ज्ञान कभी भुलाया नहीं जा सकता। क्रिया ही न सिर्फ 'थियरी' हो तो वह भुलायी जा सकती है। साक्षात क्रियायुक्त ज्ञान में ३३ प्रतिशत नहीं चलेगा, शत-प्रतिशत ही चलेगा। ज्ञान में लेशमात्र कच्चाई नहीं चल सकती।

आज इतनी बेकार तालीम दी जा रही है कि यदि मेरे हृदय में बगावत की जो वृत्ति है, वह विद्यार्थियों में होती, तो बहुत ज्यादा बगावत करते। आप यह मत समझिए कि मैं बगावत को उत्तेजन देने वाला नहीं हूं। जरूर उत्तेजन दूंगा। परन्तु बगावत का एक तरीका होता है। आपके ही वोट से सरकार बनी है और आप ही की सरकार ने सब प्रकार के शस्त्र रखने का अधिकार पुलिस को दिया है और आप उस पुलिस का मुकाबला करने के लिए पत्थर और ढेले ढूंढ़ते हैं। बगावत करने का यह कोई ढंग नहीं। उसके लिए कोई बेहतर शस्त्र चाहिए।

बगावत करनी है तो विद्यार्थी कॉलेज छोड़कर निकल पड़ें। गांव-गांव में जाकर सेवाकार्य करें। इससे कॉलेज खाली हो जायेंगे और फिर सरकार पर आज की तालीम में फौरन बदल करने का दबाव आयेगा। लेकिन जिस तरह के दंगे आजकल विद्यार्थियों के चलते हैं उनसे उनकी कोई ताकत नहीं बनती।

आज की अनर्थकारी विद्या

मैं आज की तालीम से बेहद असंतुष्ट हूं। यह आज की बात नहीं है। जब मैं स्कूल-कॉलेज में पढ़ता था, तब भी असंतुष्ट ही था। बीच में ४०-५० साल गुजर गये, लेकिन जो तालीम उस वक्त चलती थी, करीब-करीब वही तालीम आज भी चल रही है। अगर उसमें और आज की तालीम में कुछ फर्क होगा, तो यही होगा

कि आज की तालीम कुछ कमजोर होगी, बच्चों का स्तर गिरा हुआ होगा। जब मैं कॉलेज में पढ़ता था, तब मैं तालीम के बारे में इतना असंतुष्ट था कि मेरे जीवन का एक-एक क्षण व्यर्थ जा रहा है, ऐसा मैं अनुभव करता था। मैं कक्षा में पूरा हाजिर भी नहीं रहता था। आखिर एक दिन मेरे पास जो सर्टिफिकेट थे, उन्हें जलाकर घर और कॉलेज छोड़कर निकल पड़ा। मुझे आज तक उसका पश्चाताप नहीं हुआ है, क्योंकि मैंने देखा कि कॉलेज में जो क्रम चलता था, वह सारा-का-सारा अत्यंत शुष्क और यांत्रिक था। असलियत के साथ उसका कोई ताल्लुक नहीं था।

रद्दी-से-रद्दी तालीम

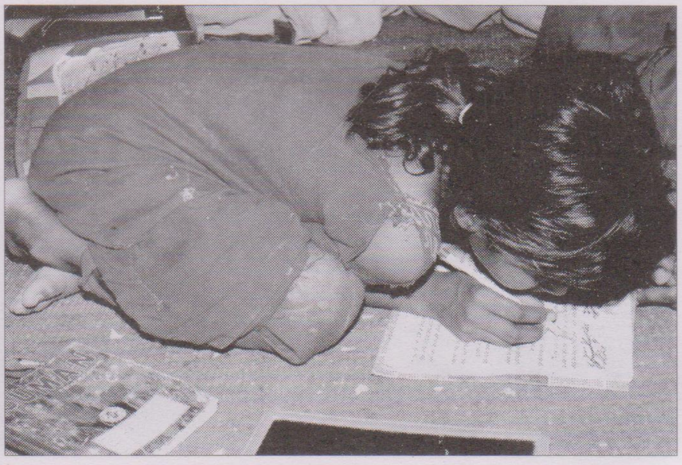
आज जगह-जगह शालाएं खुलती हैं, मगर मुझे वे सब प्राणहीन दिखायी देती हैं। थोड़ा-सा अक्षरज्ञान दे देते हैं, पर जीवनोपयोगी ज्ञान नहीं मिलता। अपने देश में दारिद्रय है उसका मुझे उतना दुःख नहीं, जितना अज्ञान का है। लोगों को अज्ञान से छुड़ाने वाले शिक्षित लोग मिलते नहीं। सब शिक्षितों को यह भूलना नहीं चाहिए कि गांव के लोगों ने कष्ट करके अन्न पैदा किया, तब हम शिक्षा प्राप्त कर सके। गांव-गांव में अज्ञान भरा पड़ा है और शिक्षित लोग अपने-अपने संसार में रत हैं। इसका कारण आज की निकम्मी तालीम है। अब इसमें कोई पराक्रम ही बाकी नहीं रहा। आज की शिक्षा में धर्मविचार, चारित्र्य, शरीर ज्ञान अध्यात्मविद्या कुछ भी नहीं मिलता। वर्तमान शिक्षा की यह महिमा है कि जिस छात्र को मैट्रिक तक पढ़ने को मिल जाता है, वह श्रम की क्या, अपनी आत्मा की भी प्रतिष्ठा खो बैठता है। जहां गुरु-शिष्य-भाव नहीं है, त्याग या सेवावृत्ति का नामोनिशां नहीं है, नैतिक वातावरण नहीं है, स्वधर्म का अभ्यास नहीं है, मातृभाषा के प्रति सम्मान नहीं है, श्रम की कोई कीमत नहीं है और स्वतंत्र विचारों का कोई मूल्य नहीं है ऐसे आत्मनाश के जो यंत्र खड़े किये हैं, वहां अर्थनाश का क्या हिसाब? पर चूंकि पैसा गुलामों का ईश्वर है, इसलिए अर्थनाश का हिसाब उनकी समझ में आ सकता है। कम-से-कम उसे देखकर भी आंखें खुलें इतना ही कहना है।

अगर जाहिर किया जाये कि रद्दी-से-रद्दी तालीम का कोई नमूना जो पेश करेगा, उसको महावीर चक्र देंगे, तो मेरा ख्याल है आज की तालीम को महावीर चक्र मिलेगा। इससे बदतर शिक्षा-योजना बनाना चाहें तो भी बना नहीं सकेंगे।

मैं कहना यह चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की तालीम का ढांचा इतना दकियानूसी है कि उस पर विज्ञान का कोई असर नहीं है और आज का समाज बदला है, उस माहौल (वातावरण) का भी कोई असर नहीं है। तिसपर भी वह तालीम बेखटके चल रही है। तालीम यानी संयोजन का एक अंग (विभाग) हो गया है। पढ़े-लिखे लोगों में जो बेकारी है, उसे हटाने के लिए क्या-क्या करना है? नये स्कूल खुलेंगे तो इतने लोगों को नौकरियां मिलेंगी आदि सोचते हैं। यानी तालीम की ओर भी 'जॉब' (नौकरी) देने के खयाल से देखना ही अच्छा समझा जा रहा है। हां, स्कूलें खोलने से पढ़े-लिखे बेकारों को नौकरी तो मिलती है, लेकिन वे जिस फैक्टरी को चल तो है, वह फैक्टरी बेकारों की तादाद बढ़ाने वाली है, यह सोचने की बात है।

अंग्रेजी शिक्षा के त्रिदोष

अंग्रेजों ने भारत में जो शिक्षा-पद्धति चलायी, वह अपने स्वार्थ को साधने के लिए चलायी। उस पद्धति में मुझे त्रिदोष दीखते हैं, जो कफ-वात-पित्त के प्रकोप जैसे भयानक हैं। अंग्रेजी राज्य के कारण इस देश में एक बड़ी दुर्घटना यह हुई कि कुछ लोगों को अंग्रेजी तालीम, जिसे ऊंची तालीम भी कहा जाता है, वह मिली और शेष

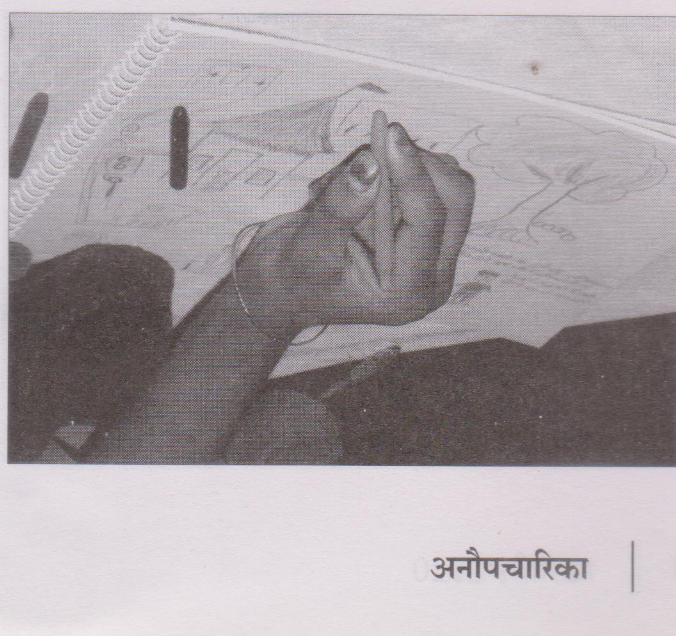


को नहीं। फलत: विद्वान और अविद्वान ऐसे दो वर्ग पड़ गये। जिन्हें विद्या मिली, वह भी स्वदेशी नहीं थी, विदेशी थी, फलत: भेद और संघर्ष बढ़ते ही गये। केवल पांच प्रतिशत लोगों को विद्या मिली और बाकी सबकों मूरख रखा। यह विद्या भी ऐसी दी कि विद्या पानेवाले दूसरे लोगों के साथ मिलजुलकर नहीं रह सकते, वे शहरों में भाग गये। इस तरह समाज के दो टुकड़े पड़ गये।

दूसरी घटना यह हुई कि जिन्हें तालीम दी गयी, उनका जीवनमान ऊंचा बनाया गया, जो इस देश की सभ्यता के विरुद्ध था। यहां विद्या और ज्ञान के साथ त्याग जोड़ा गया और माना गया कि जिन्हें विद्या प्राप्त नहीं है, वे अगर आनन्द-भोग लेते हैं, तो उसमें हर्ज नहीं, क्योंकि वे अज्ञान में हैं। पर ज्ञानी वैसा भोग लें तो वह ठीक नहीं है। पर आज का विद्वान तो विद्यानन्द नहीं, दूसरे ही आनन्द के भोग में तृप्त होता है। विद्या के साथ ऊंचा जीवनमान यानी भोग और पैसा जोड़ा गया, यह विद्या का अपमान है। परिणामस्वरूप विद्या की नहीं , पैसे की वासना बढ़ी।

शिक्षा के साथ तीसरी दुर्घटना यह हुई कि शिक्षा के साथ काम को नहीं जोड़ा गया। आज की शिक्षा व्यवसायपरक नहीं है, अनुत्पादक है। परिणामत: बिना काम किये विद्वान आनन्द का भोग चाहता है और शरीरश्रम को नीचा मानता है। इसका अर्थ यह है कि उत्पादन करने की अक्ल तो है नहीं, सिर्फ भोग लेने की ही अक्ल है।

आयुर्वेदानुसार कफ-वात-पित्त का प्रकोप रोगी को समाप्त कर सकता है। तालीम के ये त्रिदोष उतने ही



भयानक हैं। खराब भोजन से भोजन न करना बेहतर है। कुछ-न-कुछ खाना चाहिए, इसलिए जहर तो नहीं खाया जा सकता!

आरामतलब तालीम

आज की तालीम बिलकुल 'आराम से, आराम में, आराम के लिए' ही दी जा रही है। तालीम देनेवाला कुर्सी पर बैठेगा, लेने वाला बैंच पर बैठेगा, आराम से तालीम दी जायेगी और ली जायेगी। तालीमार्थी लड़के को घर में मां-बाप काम नहीं सौंपेंगे, क्योंकि लड़का पढ़ रहा है। तालीम के बाद भी लड़का नौकरी ही चाहेगा, ताकि काम न करना पड़े। मतलब यह हुआ कि जो तालीम दी जा रही है, वह आराम के लिए ही दी जा रही है। परन्तु हमारे पूज्य नेता पण्डित नेहरू ने जाहिर किया कि 'आराम हराम है।' तो मानना पड़ेगा न कि जो तालीम दी जा रही है, वह भी हराम है?

अंग्रेजों की दूषित शिक्षा-पद्धति

अंग्रेजों ने यहां की शिक्षा-पद्धति तय करते समय दो बातें ध्यान में रखी थीं। एक तो शिक्षा ऐसी हो, जिसके द्वारा अंग्रेजी शासन चलाने में मदद करने वाले लोग तैयार हों अर्थात लोगों की गुलामी की वृत्ति टिकी रहे। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं था, क्योंकि यहां के लोग अपने को यानी अपनी संस्कृति को निकृष्ट नहीं मानते थे। यद्यपि उन्होंने अंग्रेजों का बल (राज्य) मान्य किया था, क्योंकि वे जीते गये थे; परन्तु अंग्रेजों की संस्कृति को वे श्रेष्ठ नहीं मानते थे। उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का भान था, जो अंग्रेजों के लिए खतरा साबित हो सकता था। राज्यकर्ता की संस्कृति के लिए आदरभाव न होना राज्य स्थिरता की दृष्टि से एक खतरा ही माना जायेगा। इसलिए असंतोष फैलाना, अंग्रेजों की संस्कृति श्रेष्ठ है, यह शिक्षा देना जरूरी था। तो गुलामी की वृत्ति को पनपाने वाली और अंग्रेजी संस्कृति की श्रेष्ठता मानस पर थोपने वाली ऐसी दुहरी शिक्षा-पद्धति अंग्रेजों ने बनायी।

आज शिक्षा के संबंध में जो सर्वसाधारण में अलग-अलग विचार प्रचलित हैं, वे सभी इसी दुहरी शिक्षा-पद्धति से आये हैं। इसलिए आज की शिक्षा-पद्धति इन दोनों दोषों से दूषित है। अलावा एक और बड़ा दोष

उसमें है। वह यह कि इस पद्धति में जीवन के आठ-दस साल शिक्षा प्राप्त करने में जाते हैं और उसके बाद जीवन की शुरूआत होती है। मतलब इन आठ-दस सालों में किसी काम की जिम्मेदारी, कोई सामाजिक कर्तव्य माना नहीं जाता। यह एक बड़ा विचार दोष है।

जैसे मनुष्य का सिर और धड़-रुंड और मुंड-अलग-अलग कर देने से जो होगा वैसे, शिक्षण को जीवन से और जीवन को शिक्षा से अलग कर देने से, शिक्षण या जीवन कोई भी अपनी जगह पर बचता ही नहीं।

शिक्षा-जीवन की कला

मनुष्य के हाथ में कोई काल है, तो वह वर्तमानकाल है। भूतकाल उसके हाथ में नहीं है, क्योंकि वह जा चुका है। भविष्यकाल आने वाला है, वह भी उसके हाथ में नहीं है, क्योंकि उसका भरोसा नहीं हैं। ऐसी स्थिति में जो काल हाथ में है वह वर्तमानकाल, भविष्यत् जीवन की यानी अनिश्चित जीवन की तैयारी करने में बिताना, यह ख्याल ही विचित्र लगता है। इसमें होता यह है कि जब विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करता है, तब जीवन के साथ उसका कोई ताल्लुक नहीं रहता और जब जीवन के साथ संबंध आता है तब शिक्षा प्राप्त नहीं होती। इसके कारण जीवन में और शिक्षण में कोई प्राण नहीं रहता। जीवन के बिना शिक्षण निष्प्राण है और शिक्षण के बिना जीवन निष्फल है। जैसे मनुष्य का सिर और धड़-रुंड और मुंड-अलग-अलग कर देने से जो होगा वैसे, शिक्षण को जीवन से और जीवन को शिक्षा से अलग कर देने से, शिक्षण या जीवन कोई भी अपनी जगह पर बचता ही नहीं। तैरना सीखना हो तो पानी में उतरना होगा। पहले विद्यार्थी का पानी के साथ संबंध जोड़ देना होगा, फिर तैरने की कला के पाठ देने होंगे। कोई अगर यह कहे कि जब तक तैरना नहीं आता तब तक पानी में उतरूंगा ही नहीं, तो उसे क्या कहेंगे? जीवन और शिक्षण बिलकुल एकरूप हैं, उन्हें अलग कर देने से कोई काम बनेगा नहीं। शरीर के हर अवयव की पूर्ण और व्यवस्थित वृद्धि होना, इन्द्रियों का कार्यकुशल बनना, विभिन्न मनोवृत्तियों का सर्वांगीण विकास होना, बौद्धिक शक्तियों का प्रगल्भ और प्रखर बनना, इन सब नैसर्गिक या प्राकृतिक प्रवृत्तियों का विकास ही शिक्षण है। अर्थात् 'जीवन प्राप्त कर लेने की कला ही शिक्षण है।'



मनुष्य को सर्वाधिक जरूरत हवा की है। इसलिए श्वास लेने की कला अत्यावश्यक है। वह सीखनी चाहिए। ठीक, सम श्वास लेना शिक्षण है, उससे बुद्धिविकास होता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया बहुत महत्त्व की है। यद्यपि वह स्वाभाविक लगती है, वह स्वाभाविक नहीं है, उसके लिए श्रम करने पड़ते हैं। इसीलिए मनुष्य को मृत्यु आती है। अगर किसी उपाय से अहोरात्र होने वाले श्वासोच्छ्वास के श्रम से मनुष्य बच सके तो उसका जीवनकाल बढ़ेगा। इस श्रम से आराम पाने के लिए ही मृत्यु आती है। हवा की तरह ही, बल्कि हवा से ज्यादा आकाश की आवश्यकता है। इसलिए ज्यादा-से-ज्यादा समय आकाश के नीचे रहने का अभ्यास करना चाहिए। उससे आकाश की विशालता का, अलिप्तता का अध्ययन सहज ही हो जाता है। फिर, मनुष्य को पानी को भी जरूरत होती है। यदि जीवन को पानी की जरूरत है तो पानी खींचने में, पानी प्राप्त करने लेने में आनन्द और शिक्षा है। उसके बाद आता है अन्न। अगर अन्न की जरूरत है तो अन्न पैदा करना, उसको पकाना, उसकी देखभाल करना शिक्षण है। उसमें मनुष्य का विकास है। यह ईश्वर की बड़ी कृपा है कि उसने मनुष्य के पेट में भूख रखी है। वह उसने शिक्षण के लिए ही रखी है। भूख के कारण मनुष्य श्रम करता है। श्रम के कारण शिक्षण में आनन्द आता है। इस प्रकार जीवन प्राप्त करने के काम में ही शिक्षा मिलती जाती है। जैसे-

जैसे मनुष्य की भूख बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे शिक्षा बढ़ती जानी चाहिए। ईमानदारी से स्वावलम्बनपूर्वक आजीविका प्राप्त करना शिक्षा का प्रथम आधार है। इसी को यज्ञ कहते हैं।

शिक्षण और नौकरी

शिक्षा में आत्मिक शिक्षण, शारीरिक शिक्षण और एकआध कारीगरी, उद्योग-इतना तो होना ही चाहिए। इसके साथ गणित, भूगोल, हिन्दी और स्थानिक भाषा सिखा सकते हैं गांव के लोग ऐसे सिखानेवाले विद्वान को बुला सकते हैं। फिर सरकार विभागीय परीक्षा ले। उसके लिए विषय, पाठ्यक्रम आदि जाहिर करे। फिर जिनको परीक्षा देनी हो, वे फीस भरें और परीक्षा दें। उसके लिए डिग्री की कोई जरूरत न हो। वह किसी भी खाते की परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो जाने पर नौकरी करे।

संस्कार-शिक्षण जनता के हाथ में और विज्ञान का सरकार संभाले

वैज्ञानिक शाखा का शिक्षण सरकार दे, परन्तु जिसको लिबरल एजुकेशन, संस्कार का शिक्षण, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षण कहते हैं, उस पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रहना चाहिए। सरकार से सिर्फ आर्थिक मदद मिलनी चाहिए। जिससे मनुष्य का चारित्र्य बनता है, जीवन बनता है वह शिक्षण जनता के हाथ में होना चाहिए। विज्ञान के लिए सरकार स्वतंत्र स्कूल चलाये, उसमें कोई हर्ज नहीं, बल्कि वह सरकार ही चलाये, ऐसा मेरा आग्रह है। इतनी बात है कि जितना विज्ञान गांव में सिखा सकते हैं उतना गांवों में ही सिखाना चाहिए। गांव के लिए जितना जरूरी विज्ञान है, वह एक घण्टा सुबह और एक घण्टा शाम को सिखाना चाहिए। काम के साथ विज्ञान का योग हो। विज्ञान के लिए कुछ साधन भी हर गांव में हों। दो-चार गावों के बीच एकआध लेबोरेटरी, एकआध संग्रहालय भी रखना चाहिए। विज्ञान का प्राथमिक शिक्षण जिसे हम सामान्य विज्ञान कहते हैं वह एकआध घण्टे में सिखा सकते हैं। मैं एक घण्टे के स्कूल की बात करता हूं तो उसमें एक घण्टा यानी एक ही घण्टा ऐसा नहीं, उसका भावार्थ लेना है, अक्षरार्थ नहीं। एक-दो घण्टे, जैसी आवश्यकता हो। ❑

बेचारा बालक

❑

भागीरथ शर्मा

बेचारा बालक
किसको खुश रक्खें?
किसका हुक्म बजावें?

यह दो पाटों के बीच दबा पड़ा है।

पिता- (अपनी लड़की से) जा, देखकर आ, रोटी बन गई क्या? लड़की भीतर जाती है। मां से पूछती है- मां, क्या मैं पिताजी से कह दूं कि रसोई तैयार है? वे पूछ रहे हैं। मां, जो घबराई हुई है, जल्द-जल्द काम कर रही है, देर न हो जाय, और पतिदेव नाराज न हों, इस डर से कह देती है- हां, जा कर कह दे, रोटी बन रही है; बिलकुल देर नहीं है। लड़की आकर मां के शब्दों को दोहरा देती है।

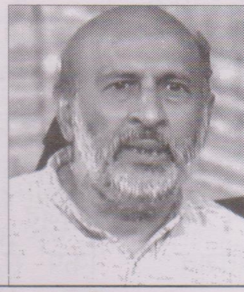
पिता इस उत्तर को सुनकर थोड़ी शांति का अनुभव करते हैं। थोड़ी देर बाद ही फिर उन्हें अपनी जल्दी का ध्यान आता है। वे एकदम उठते हैं, और रसोइघर में जाते व देखकर कहते हैं- अच्छा, चूल्हा अभी ही जला है! अभी केवल शाक पक रहा है।

उनके क्रोध की सीमा न रही। पत्नी को खरी-खोटी सुनाकर उसी क्रोधावेश में बाहर आते हैं। रहा-सहा क्रोध लड़की पर उतर पड़ता है।

लड़की मेरे पास बैठी है। मैं उसे पढ़ा रहा हूं। मेरे कान सहसा नजदीक ही से ये शब्द सुनते हैं- नालायक, मुझे झूठ ही आकर कह दिया कि रोटी बन रही है, बिलकुल देर नहीं है, और अभी वहां शाक ही बन रहा है। अभी से झूठ बोलना सीख गई है?

मैं अवाक था-शांत था, इतना शांत कि केवल शश्वास-नलिका ही अपना काम कर रही थी, किन्तु मस्तिष्क के सब तार झनझना उठे थे।

मैं सोच रहा था-
बेचारी बाला किसको खुश रक्खे?
किसका हुक्म बजावे? ❑



अरविन्द गुप्ता

गरीबों की शिक्षा

भारत के गरीब बच्चे आज भी शिक्षा से वंचित हैं। शिक्षा के अधिकार का कानून-आरटीई भी संसद ने पारित कर दिया पर गरीब बच्चे न केवल गरीब हैं बल्कि सबके सामने यह जताया भी जा रहा है कि वे गरीब हैं। यह एक अलग तरह की त्रासदी है जो कमोबेश दुनिया के हर देश में छायी हुई है। गरीब और अमीर बच्चों में स्कूलों में ही भेदभाव किया जाता है और भयंकर अभाव में जीने वाले बच्चों को यहां वहां सब जगह प्रताड़ित किया जाता है। ऐसे बालकों की शिक्षा को संभव बनाने का एक प्रयोग जे.मैथ्यूज ने किया और अमरीका में उनकी किताब प्रकाशित हो गई। उसी किताब के बारे में बता रहे हैं अरविन्द गुप्ता। सं.❑

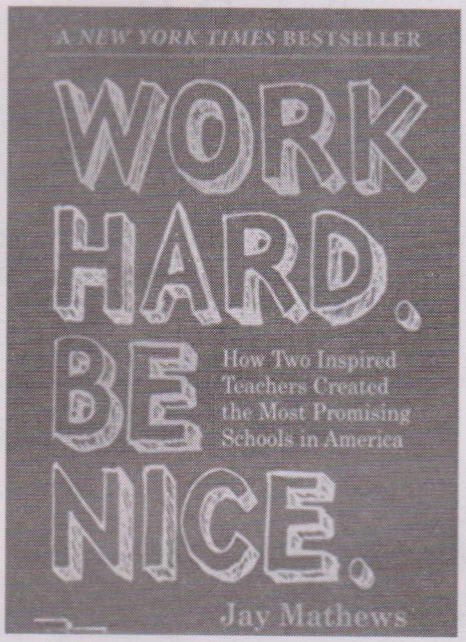
एक अरसे पहले छपी शिक्षा पर एक पुस्तक '**वर्क हार्ड, बी नाईस**' ने अमरीका में काफी तहलका मचाया। पुस्तक को जे. मैथ्यूज ने लिखा है। पुस्तक को बहुत सराहना मिली – बिल गेट्स ने अपने एक भाषण में इसकी बहुत तारीफ की और सारे श्रोताओं को इसकी एक-एक प्रति मुफ्त भेजने का ऐलान किया।

यह कहानी है दो जांबाज और उत्साही लोगों की जिन्होंने अमरीका में पिछड़े वर्ग के गरीब बच्चों के लिए शिक्षा का एक अपार सफल मॉडल रचा है। पते की बात यह है कि दोनों – माईक फाइनबर्ग और डेव लेविन पेशे से शिक्षक नहीं थे। सोलह वर्ष पहले जब वे यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे तब अमरीका में एक मुहिम चला था– नाम था '**टीच फॉर अमरीका**'। इसमें यूनिवर्सिटी के उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को, गरीब बच्चों के स्कूलों में जाकर पढ़ाना था।

अमरीकी समाज में भी शिक्षा के मामले में गरीब-अमीर बच्चों के बीच बहुत भेदभाव है। रईसों के बच्चों के लिए उम्दा स्कूल, अच्छे शिक्षक और फिर उनके नतीजे भी अच्छे। दूसरी ओर गरीबों के बच्चों के लिए कम सुविधाएं और अप्रेरित शिक्षक। नतीजा साफ है– गरीबी से जूझते बच्चे, स्कूल जैसी थोपी व्यवस्था को झेल नहीं पाते। वे जल्द ही झुलस जाते हैं– फेल होते हैं, कम नंबर पाते हैं। अंत में स्कूल से निकाल दिए जाते हैं अथवा मजबूरी के कारण स्कूल छोड़ देते हैं। ये गरीब मूलतः स्पैनिश और ब्लैक्स होते हैं। ये वही मेहनतकश हैं जो खून-पसीना बहाकर, सबसे निम्न काम करके अमरीका को एक महान राष्ट्र बनाते हैं।

माईक और डेव ने 'टीच फॉर अमरीका' कार्यक्रम की उपलब्धियों और खामियों दोनों से बहुत कुछ सीखा। उन्होंने दो ऐसे प्रेरक शिक्षकों को तलाशा जिन्होंने गरीब बच्चों को सिखा पाने में अपार सफलता हासिल की थी। उनके तरीकों का बारीकी से अध्ययन, मनन-चिंतन किया और उनका कार्यक्रम में समावेश किया। बाद में कुछ अन्य

प्रेरित शिक्षकों के सहयोग से उन्होंने 'के आई पी पी'; 'किप'- नालिज इज पॉवर प्रोग्राम कार्यक्रम शुरू किया। यह कार्यक्रम अब १९ राज्यों के ६६ स्कूलों में चल रहा है और इसमें १६००० से भी अधिक छात्र पढ़ रहे हैं। यह स्कूल पांचवी से आठवीं के बच्चों के लिए हैं। 'किप' के ८० प्रतिशत बच्चे गरीब घरों के हैं। उनमें से ९५ प्रतिशत मूलत: स्पैनिश या ब्लैक्स हैं। अभी तक जिन १४०० बच्चों ने 'किप' का ३-वर्षीय कोर्स पूरा किया है उनके नंबरों में बड़ा उछाल आया है। भाषा में उनका स्कोर जो पहले औसतन ३४ था अब बढ़कर ५८ हुआ है। गणित में तो इससे भी कहीं बेहतर परिणाम मिले हैं- उनका स्कोर ४४ से कूद कर लगभग दुगना यानी ८३ हुआ है! गरीब बच्चों के शिक्षण के किसी कार्यक्रम को अमरीका में आज तक इतनी बड़ी सफलता नहीं हासिल हुई है।



माईक और डेव के लिए यह चुनौती तमाम मुश्किलों से भरी थी। उनकी यूनिवर्सिटी की पढ़ाई इसमें कुछ खास काम नहीं आई शुरू में बच्चों का बर्ताव एकदम अहसनीय था, स्कूली शासन भी गरीब बच्चों के प्रति पूर्णत: उदासीन था। परंतु फिर भी इन दोनों ने अपना संघर्ष कायम रखा - कक्षाओं में अनुशासन बनाए रखा, मां-बाप से घरों में जाकर मिले और उनकी समस्याएं सुनीं। बच्चों की स्पैनिश बोलने की क्षमता को बढ़ाया। स्कूल के घंटों को भी बढ़ाया। स्कूल हफ्ते में छह दिन, सुबह साढ़े-सात से शाम पांच बजे- नौ घंटे लगने लगा। शनिवार और गर्मी की छुट्टियों में भी स्कूल तीन हफ्तों के लिए खुला रहता। हर छात्र को शिक्षक का टेलीफोन दिया गया जिससे कि होमवर्क या अन्य किसी दिक्कत में वे शिक्षक से संपर्क साध सकें।

'किप' कार्यक्रम पांच बुनियादी उसूलों पर टिका है - ऊंची अपेक्षाएं, लचीलापन एवं लगाव, लंबे घंटे, प्रेरक लीडरशिप और नतीजों पर फोकस। 'किप' के छात्र रोजाना नौ घंटे, यानि सामान्य छात्रों से ६० प्रतिशत ज्यादा समय स्कूल में बिताते हैं। पढ़ाई के साथ-साथ खेल-कूद, अनुभव द्वारा शिक्षण और व्यक्तिगत विकास पर भी काफी बल दिया जाता है। इतने लंबे घंटों के बावजूद 'किप' के स्कूलों में हाजिरी ९६ प्रतिशत रहती है। 'किप' से निकले ८० प्रतिशत छात्रों ने कालेजों में दाखिला लिया है और लगभग ढाई करोड़ अमरीकी डॉलर वजीफों के रूप में जीते हैं। सामान्यत: ब्लैक और स्पैनिश मूल के केवल २० प्रतिशत बच्चे ही कालेज जा पाते हैं। 'किप' के कारण इस संख्या में बहुत उछाल आया है। 'किप' का नारा है- चाहे छात्र कितना भी कमजोर क्यों न हो, वो डटकर मेहनत करे और कालेज जाए। हरेक मां-बाप के मन में अपने बच्चों को कालेज भेजने की ललक होती है। वे भी इसमें सहयोग देते हैं। कालेज की डिग्री पाकर गरीब छात्रों का मनोबल बढ़ता है और जीवन के बहुत से बंद दरवाजे उनके लिए सदा के खुल जाते हैं।

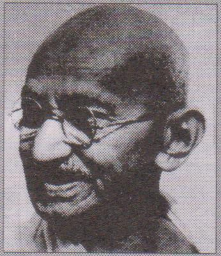
हमारे देश में भी इस प्रकार की सीमित सफलताओं के कई उदाहरण हैं। पटना में आनंद कुमार - गणितज्ञ द्वारा चलाई जा रही 'सुपर-३०' स्कीम इसकी एक अद्वितीय मिसाल है। २००३ से वो हर वर्ष, ३० गरीब बच्चों के लिए यह कार्यक्रम चलाते हैं। इनमें बहुत से बच्चे पिछड़ी जातियों और निम्न वर्ग के हैं। जिनके माता-पिता खेती या मजदूरी करते हैं। इनमें से चयनित बच्चों को दो साल की मुफ्त ट्रेनिंग, रहने और खाने की व्यवस्था दी जाती है। फिर वे आई आई टी की प्रवेश परीक्षा में बैठते हैं। हर वर्ष इनमें से ९० प्रतिशत छात्र, दुनिया की सबसे कठिन समझी जाने वाली इस परीक्षा में सफल होते हैं। २००८ की परीक्षा में १०० प्रतिशत बच्चों को सफलता मिली। आनंद कुमार गणित की एक अन्य कोचिंग क्लास चलाते हैं और उससे अर्जित कमाई को इन गरीब बच्चों पर खर्च करते हैं।

इन प्रयोगों से हम क्या सबक सीख सकते हैं? गरीब, निरक्षर परिवारों में जन्मे बच्चों में भी वही प्रतिभा होती है जो अमीर-धनी बच्चों में होती है। 'जीनोम' प्रोजेक्ट भी यही दिखाता है- दुनिया के हरेक शख्स के ९९.९९९ प्रतिशत जीन्स लगभग समान होते हैं। इसलिए जाति, वर्ग, गरीबी के आधर पर किसी को बौद्धिक रूप से होशियार या कमजोर करार देना सरासर गलत है। परिस्थितियां अनुकूल होने पर यह गरीब छात्र भी प्रगति कर सकते हैं और अव्वल कालेजों में दाखिला पा सकते हैं।

जो अभियान आज से १६ वर्ष पूर्व अमरीका में चला था वही मुहिम अब भारत में भी दोहराया जा रहा है। 'टीच फॉर इंडिया' नाम के इस कार्यक्रम के अंतर्गत १०० अत्यंत प्रेरित कार्यकर्ता मुंबई और पुणे के सरकारी म्यूनिसिपल स्कूलों में दो वर्ष तक पढ़ायेंगे और वहां नई ऊर्जा का संचार करेंगे। इसमें १०० भर्तियों के लिए २००० प्रोफेशनल्स ने अपनी अर्जियां भेजीं। इनमें से ७६ प्रतिशत लोग अच्छी नौकरियों पर स्थापित हैं - कई आई आई टी और आई आई एम के स्नातक हैं। वे सभी एक माह का प्रशिक्षण पाने के बाद अपने वर्तमान वेतन से एक तिहाई तनख्वाह; मात्रा पंद्रह हजार रुपए माह पर सरकारी स्कूलों में पढ़ायेंगे। पढ़े-लिखे लोगों में समाज के गरीब तबके के लिए इस प्रकार का दर्द होना एक बहुत अच्छी बात है। यह अभियान का पहला चरण है। बाद की रणनीति नतीजों के बाद तय की जाएगी। अभियान का सारा खर्च निजी ट्रस्ट - डेल फाउंडेशन, मेकिंजी एवं थर्मेक्स उठाएंगी।

इस प्रकार के प्रयोग एक ओर समाज की सुप्त ऊर्जा को एक दिशा प्रदान करते हैं। पर दूसरी ओर कई बुनियादी प्रश्न भी उठाते हैं। क्या प्रयोग महज एक बेहतर 'डिलेवरी' तंत्र है या उसमें एक नए समाज, एक नई शिक्षा का दर्शन भी है। अगर वर्तमान शिक्षा में ही कुछ खोट है, तो खोटा सिक्का और अधिक तेजी से चलाने से क्या लाभ? क्या महान शिक्षाविदों गिजुभाई, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, नील, गांधी, होल्ट के शिक्षा-दर्शन का इसमें कुछ समावेश है? कोटा के कोचिंग क्लासेज में रट्टा मार कर आई आई टी में दाखिला पाने वाले छात्र क्या कभी अच्छे इंसान बन पाएंगे? क्या स्वप्रेरित के लिए कार्यकर्ताओं की पूर्व पढ़ाई इस प्रयोग में कहीं काम आएगी? क्या १०० से बढ़कर इनकी संख्या कभी लाखों तक पहुंचेगी? सवाल और भी हैं। परंतु अभी के लिए सरकारी स्कूलों की बेहतरी के लिए किए जा रहे इस प्रयोग का स्वागत और इसे गहराई से समझने की कोशिश की जानी चाहिए। ❑

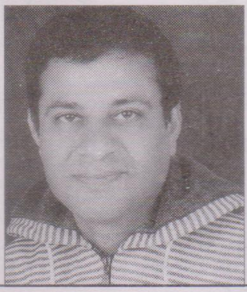
आवाज का महत्व



आवाज के महत्व को मैं भली भांति समझता हूं। जो शोर मचाता है वह अपनी और सुनने वालों की यानी दोनों की तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुंचाता है। बिना वजह जोर-जोर से बोलना सिर्फ असभ्यता ही नहीं, हिंसा भी है। हम हिन्दुस्तानियों में यह जो एक दुर्गुण है उसे मिटाने का प्रयत्न शिक्षक आसानी से कर सकता है। अगर उसके विद्यार्थी शोर करते हैं, तो वह मीठे शब्दों से उन्हें शांत कर सकता है। छात्रावास के संचालक भी इस काम को आसानी से कर सकते हैं! ❑ -गांधीजी

चार आधार स्तंभ

सत्य, अहिंसा, शरीर-श्रम का गौरव और स्वार्पण। ये हमारी प्रत्येक पाठशाला के चार आधार स्तंभ होंगे। बालक शुरू से यह सीखेंगे कि वे कोई न कोई उपयोगी चीजे बनाकर उस के द्वारा बचपन से ही राज्य के कमाऊ नागरिक बन जाते हैं। वे देश के लिए और स्वार्पण के रूप में, कुछ न कुछ करते हैं। ❑ -गांधीजी



डॉ.ओमप्रकाश टाक

बच्चों के बंधुजी

एक थे बंधुजी। बाल निकेतन जोधपुर के बंधुजी। भाईसाहब बंशीधरजी के बुलावे पर कानपुर से जोधपुर आ बसे बंधुजी। जितने बंशीधरजी समर्पित थे बालकों के प्रति उतने ही बंधुजी भी समर्पित थे। उनका भी मूल मंत्र बाल देवो भवः था। जब से आये थे तब से बाल निकेतन में ही रहे। यही कोई चालीस-पचास बरस। गृहस्थी की कोई जिम्मेदारियां थी नहीं। इसलिये बाल निकेतन ही ओढ़ने-बिछाने और भोले-भाले बालकों की संगत ही आमोद-प्रमोद बन गई थी। यही जीवन था। बाल शिक्षा शास्त्र के अद्‌भुत विद्वान थे। मोन्तेस्सोरी, पियाजे, फ्रोबेल, जॉन लॉक आदि सबसे उनका परिचय था और सूर तुलसी से भी। भारतीय परम्परा में रमे-पगे बंधुजी महात्मा गांधी के अनन्य अनुचर थे। यहां प्रस्तुत है भाई ओम प्रकाश टाक द्वारा उनके साथ की गई एक बातचीत। सं.❑

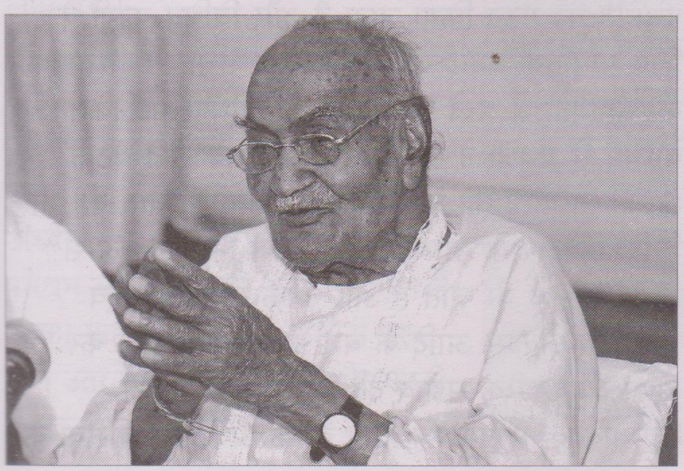
शाम का समय। धूप का आखिरी टुकड़ा बाल-निकेतन के खाली पड़े झंडा मैदान की दीवार लांघ रहा है। स्कूल का विशाल भवन बच्चों की चहल-पहल के बिना बहुत उदास-सा प्रतीत होता है। लगता है अभी बंद पड़े कमरों से टिफिन और बैग उठाए बच्चों की टोली हंसते-चहकते मैदान में आ जायेगी और सारा माहौल गुलजार हो जायेगा, लेकिन यह केवल आभास है, हकीकत नहीं। शाम के समय यहां बच्चे नहीं आते और स्कूल का खाली भवन सुबह की प्रतीक्षा में ऊंघता रहता है। मैदान पार कर मैं आगे बढ़ता हूं। सामने बालघर के दरवाजे पर जाकर नजर ठहर जाती है-खादी का सफेद धोती-कुर्ता पहने चौरानवे बरस के बंधुजी धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए बाहर निकल रहे हैं। वे सबसे पहले दरवाजे पर पड़े शाम के अखबार उठाते हैं और फिर अपने सधे कदम बढ़ाते हुए बरामदा पार कर आराम से कुर्सी पर बैठ जाते हैं।

शांत चित्त और प्रसन्न मन के मालिक बंधुजी को शाम का समय विशेष प्रिय है, इस समय वे आत्मलीन और प्रकृतिस्थ होने का उत्सव मनाते हैं। रामायण की चौपाइयां और गीता के श्लोक गुनगुनाते हुए वे शाम के धुंधलके को धीरे-धीरे अंधेरे में बदलते हुए देखते हैं। इस दौरान साथी कुंज में रहने वाले निकेतन परिवार के सदस्य आते जाते हुए बंधुजी को प्रणाम करते हैं और बंधुजी अपनी मंद, मोहक मुस्कान के साथ उनके हालचाल पूछते हैं, बात करते हैं और उन्हें आशिष देते हैं।

कितने बरस बीते, कितने मौसम बदले लेकिन बंधुजी की दिनचर्या में कोई परिवर्तन नहीं आया। मैं कई बार शाम के समय उनसे मिलता हूं। हमारे बीच उम्र में छह दशकों से अधिक का अंतराल है और इस रूप में वे मेरे दादाजी की पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन मेरे प्रति उनका व्यवहार इतना मित्रवत और आत्मीयता से भरा रहता है कि हमारे बीच उम्र के अंतराल का कोई संकेत

नजर नहीं आता। उनसे मिलने के बाद लगता है कि जीवन अधिक सहज और समृद्ध बन गया है। बंधुजी विरल विद्या व्यक्तित्व हैं। उनके पास अनुभवों का खजाना है। वे हमें जीवन के अद्‌भुत सत्य दिखलाते हैं। उनकी बातें वक्त-बेवक्त याद आती हैं और हमें ऊर्जा व उत्साह से भर देती हैं।

वर्ष 1913 में रायबरेली जिले के एक छोटे से गांव झामपुर में जन्मे उमाशंकर त्रिपाठी बंधुजी ने गांधी और गीता को अपने विचार एवं व्यवहार में आत्मसात किया है। उनके जीवन में कहीं भी भ्रम या भटकाव दिखाई नहीं देता। उनका प्रारंभ से एक ही स्वप्न रहा-बच्चों की सेवा करना और इसी स्वप्न को साकार करने के लिए वे सादड़ी, नीमच एवं पंचकुला की स्कूलों से होते हुए वर्ष 1947 में जोधपुर आए और हमेशा के लिए यहीं बस गए। यहां आकर उन्होंने बाल-निकेतन की नींव को मजबूत किया और उसे एक ऐसी शिक्षण संस्था के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई जिसे देखकर महामनीषी राहुल सांस्कृत्यायन को सोवियत शिशु-शालाओं का स्मरण हो आया तो लोकनायक जयप्रकाश नारायण को कहना पड़ा कि ऐसा विद्यालय देश में दूसरा नहीं हो सकता। भारत सरकार की ओर से 1968 में विद्यालय शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करने जब प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री अनिल बोर्दिया अमेरिका गए तो वहां के अनुभव के बाद उन्होंने बंधुजी को एक पत्र लिखा कि विदेशी शिशुशालाओं (किंडर गार्डन) की साधन-सुविधाओं से हम भले ही तुलना नहीं कर सकते लेकिन यहां भी मुझे बाल-निकेतन जैसा स्कूल देखने को नहीं मिला। बाल-निकेतन के लिये व्यक्त की गई ये



प्रशस्तियां आज अविश्वसनीय लगती हैं लेकिन यह सच है कि कभी इसी विद्यालय को देखने और समझने के लिए बाहर से लोग आते थे और शिक्षा विभाग के अधिकारी भी उस विद्यालय से जुड़कर बहुत गर्व महसूस करते थे।

बंधुजी का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि समाज में किसी बड़े और ठोस परिवर्तन के लिये शिक्षण संस्थाओं को ही पकड़ना पड़ेगा। निकेतन के माध्यम से बंधुजी ने नई समाज रचना का स्वप्न देखा और शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये। उनमें से कई प्रयोग सफल रहे तो कुछ प्रयोगों के लिए उन्हें संस्थागत तंगी के आगे झुकना पड़ा, लेकिन वे निकेतन को एक ऐसी छवि प्रदान करने में सफल रहे जहां अपने बच्चों को प्रवेश दिलाने के लिये अभिभावक लालायित रहते थे। निकेतन की यह छवि अनायास नहीं बनी, इसके पीछे बंधुजी और उनके साथियों का परिश्रम और समर्पण है, जिसने शून्य से शिखर तक की यात्रा को संभव बनाकर दिखाया।

उल्लेखनीय है कि आजादी के पूर्व जोधपुर के रातानाडा क्षेत्र में कोई स्कूल नहीं था और प्रो. मुरारीलाल और सरदारसिंह जैसे उत्साही और सेवाभावी व्यक्तियों के मन में इस क्षेत्र में स्कूल खोलने का विचार आया। उन्होंने प्रसिद्ध शिक्षाविद् बंशीधरजी जिन्हें सभी भाई साहब कहते थे, से इस स्कूल को संभालने का आग्रह किया। भाई साहब घुमक्कड़ प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और गिजुभाई के साथ रह चुके थे। उन्हें शिक्षा का गहरा अनुभव था। बंशीधरजी ने अल्पकाल के लिए इस स्कूल को संभाला और बाल-निकेतन के रूप में इसका नया नामकरण किया। वे इस विद्यालय को किसी सुयोग्य हाथों में सौंपना चाहते थे। उनका बंधुजी के साथ बहुत आत्मीय संबंध था। वे नीमच में बंधुजी का काम देख चुके थे और उनसे बहुत प्रभावित भी थे। उन्होंने पत्र लिखकर बंधुजी को नीमच से जोधपुर आने का निमंत्रण दिया और निकेतन के कार्य को आगे बढ़ाने का आग्रह किया। बंधुजी स्वयं भाई साहब की विद्वता और सज्जनता के आकर्षण में बंधे थे। उनके लिए इस आग्रह को टालना संभव नहीं था इसलिए वे नीमच छोड़कर जोधपुर आ गये। बंधुजी के मानस पटल पर आज भी बंशीधरजी की पावन स्मृतियां अंकित हैं।

उनकी दृष्टि में बंशीधरजी स्वतंत्र विचारों वाले, बहुत भावुक और सन्यस्त प्रकृति के व्यक्ति थे, यायावरी उनकी तबियत में थी। वे शिक्षा को व्यावहारिक के साथ जोड़कर देखने के अभिलाषी थे। आज बंशीधरजी संसार में नहीं हैं लेकिन उनको याद करके बंधुजी संवेदित हो जाते हैं।

बंधुजी ने अपने साथियों के साथ मिलकर तय किया कि निकेतन की शिक्षा पद्धति पूर्णत: व्यावहारिक होनी चाहिए और बच्चों को बोझिल वातावरण में नहीं बल्कि मौज मजे के माहौल में शिक्षित–दीक्षित किया जाना चाहिए।

जोधपुर में जहां निकेतन स्थित है, आज वहां पर शहर की पॉश कॉलोनी है, सर्किट हाउस, हेण्डलूम हाउस और कॉलेज हैं लेकिन पांचवें दशक के अंत में यह इलाका जंगल था और यहां जो जमीन निकेतन की स्थापना के लिए मिली वहां कंटीली झाड़ियां, जंगली घास, नीम और खेजड़ी के पेड़, गहरे गड्ढे और रेत के टीबे थे। आसपास बस्ती का नामोनिशान नहीं था, और लोग दिन में भी यहां आने जाने से डरते थे। बंधुजी को इसी भूमि पर अपनी धूनी रमानी थी। उन्होंने योजनाबद्ध तरीके से अध्यापकों और बच्चों को अलग–अलग समूहों में बांटा और उन्हें श्रमदान के लिए प्रेरित किया। देखते ही देखते जमीन का स्वरूप निखरने लगा, भूमि उत्सवा बन गई। घास और कांटों की जगह श्रम और साधना का सौरभ फैल गया। समानधर्मा साथियों के प्रयासों से स्कूल के भवन निर्माण के लिये जनसहयोग मिलने लगा और बंधुजी के सपनों की फुलवारी खिलने लगी। अब उनके सामने बच्चों के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य था और इसे कार्यरूप में परिणित करने की चुनौती थी।

बंधुजी ने अपने साथियों के साथ मिलकर तय किया कि निकेतन की शिक्षा पद्धति पूर्णत: व्यावहारिक होनी चाहिए और बच्चों को बोझिल वातावरण में नहीं बल्कि मौज मजे के माहौल में शिक्षित–दीक्षित किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि शिक्षा पद्धति ऐसी हो जिससे बच्चों में सही सोच और समझ का विकास हो। उनमें सम्यक निर्णय लेने की क्षमता आए। उनमें सादगी एवं श्रमनिष्ठा के संस्कारों का बीजारोपण हो तथा वे पारस्परिक सहकार–सहयोग की भावना के साथ जिम्मेदार एवं अनुशासित नागरिक बनने के लिए प्रेरित हों। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बंधुजी ने अनेक यात्राएं कीं और देश की प्रसिद्ध शिक्षण संस्थाओं को प्रत्यक्ष रूप से देखा। जामिया मिलिया तथा वर्धा की बेसिक शालाओं के साथ सेवाग्राम और बिहार की बाल शिक्षण संस्थाओं से वे बहुत प्रभावित हुए और इन यात्राओं में बटोरे अनुभव के आधार पर उन्होंने निकेतन की शिक्षा पद्धति रची।

कहते हैं जहां स्वच्छता है वहां ईश्वर का वास है। बंधुजी ने इसी सुभाषित से प्रेरित होकर निर्णय लिया कि स्कूल की कक्षाओं की साफ–सफाई अध्यापक और बच्चे मिलकर करें। आज भी निकेतन की साफ–सफाई ऐसे ही होती है। बच्चों के अभिक्रम को उजागर करने एवं शिक्षा में उद्यमशीलता को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए बंधुजी के बाल निकेतन में उद्योगशाला में संचालित किसी एक उद्योग का चयन हर विद्यार्थी करता है। कताई और बागवानी बेसिक उद्योग होने के कारण प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य रखे जाते हैं। निकेतन की यह उद्योगशाला लोगों के आकर्षण का केन्द्र रही है, और यहां के उत्पादों की समाज में मांग भी बनी रहती है। आज भले ही स्थितियां बदल गई हों लेकिन निकेतन की उद्योगशाला आज भी चल रही है। बच्चों को लोकतांत्रिक और प्रबंधकीय संस्कार देने के लिए बरसों से यहां बाल–पंचायत का गठन किया जाता है और विभिन्न कार्यों के लिए समितियां बनाई जाती हैं जिनका संचालन अध्यापकों की सहायता से बच्चे स्वयं करते हैं। जोधपुर में निकेतन के माध्यम से बंधुजी ने स्कूलों में अभिभावकों की बैठकें आयोजित करने की शुरुआत की। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि निकेतन के अध्यापक आज भी नियमित रूप से विद्यार्थियों के घर जाते हैं और उनके सामाजिक एवं चारित्रिक विकास आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर अपने व्यावहारिक सुझाव देते हैं। इस प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि अध्यापक बालक के

परिवार का सदस्य जैसा बन जाता है और निकेतन के साथ अभिभावकों का पारिवारिक संबंध स्थापित हो जाता है। इन सभी गतिविधियों का जोधपुर के समाज और बच्चों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। कई घरों का रहन-सहन बिल्कुल बदल गया और एक संस्कार-प्रधान समाज की नींव पड़ी। यह सिलसिला आज भी निरंतर चल रहा है।

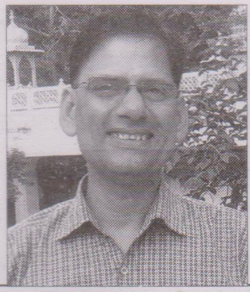
बंधुजी ने निकेतन में रहते हुए पाठ्यपुस्तकों के बिना पुस्तकालय की किताबों और अध्यापकों की ओर से तैयार की गई पाठमालाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का भी प्रयोग किया जो बहुत चर्चित रहा। शिक्षा विभाग के पाठ्यक्रम को लागू करने के दुराग्रह के चलते यह प्रयोग ज्यादा नहीं चल सका। उन्होंने प्रोजेक्ट पद्धति से शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से भी प्रयोग किया। इसमें बच्चे अपनी रुचि के अनुसार किसी प्रोजेक्ट का चुनाव करते थे और शिक्षक उसे पूरा करने में सहयोग प्रदान करते थे। यह प्रयोग परिश्रमसाध्य था और संसाधनों की भी कमी रहती थी। बच्चों के मन-मस्तिष्क में बसे परीक्षा के भूत को भगाने के लिए रटाई-घोटाई से परे हटकर शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य से बंधुजी ने प्रचलित परीक्षा प्रणाली से अलग बच्चों के दैनिक कार्यों और क्रियाकलापों को देखकर विकास फल तैयार करने का भी प्रयोग किया, लेकिन जब बच्चे आगे की पढ़ाई के लिए दूसरी शिक्षण संस्थाओं में जाते तो वहां प्रवेश के लिए उनसे अंकतालिका मांगी जाती थी। इस मुश्किल के रहते बंधुजी को मजबूर होकर बेमन से प्रचलित परीक्षा प्रणाली का ही आश्रय लेना पड़ा।

बंधुजी का मानना है कि शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले प्रयोग और परीक्षण तभी सफल होते हैं जब हमारे पास पर्याप्त संसाधन और निष्ठावान अध्यापक सुलभ हों। वे निष्ठा और परिश्रम को जीवन की कसौटी मानते हैं। उनका कहना है कि इस कसौटी पर खरा उतरने के लिए कथनी और करनी में एकता आवश्यक है, तभी समाज हमें गले लगाता है। कई लोगों को आज भी याद है निकेतन का कार्य करते हुए बंधुजी के कार्यालय की बत्ती देर रात तक जलती रहती थी। इतना ही नहीं उनके एक आह्वान पर साथी अध्यापक और विद्यार्थी कार्य में तत्पर हो जाते थे और निकेतन के कार्यों के लिए दिन रात एक कर देते थे। जब मैंने इस सफलता का रहस्य बंधुजी से पूछा तो उन्होंने बहुत सहज भाव से उत्तर दिया कि उनका अपने सहकर्मियों से सदैव एक ही निवेदन रहता था कि जब मैं आग में काम करूं तो तुम धूप में काम करो, जब मैं धूप में काम करूं तो तुम छाया में काम करो, और जब मैं छाया में काम करूं तो तुम मौज करो। सचमुच इसी कथन को बंधुजी ने अपने जीवन कर्म का श्लोक बनाया और आज इस परिणत वय में भी वे अपना काम खुद करने में विश्वास रखते हैं और अनुशासित दिनचर्या एवं संयमित आहार के साथ स्वयं को तरोताजा रखे हुए हैं।

बंधुजी ने विवाह नहीं किया और वे सच्चे अर्थों में एक साधक का जीवन जी रहे हैं। ईश्वर में उनकी अगाध श्रद्धा है और उन्हें यह सुख और संतोष है कि ईश्वर ने जो काम उन्हें सौंपा, उसे उन्होंने पूजा की तरह समर्पण भाव से पूरा किया। उनके जीवन का एकमात्र दुख यह है कि जिन गांवों को उन्होंने बचपन से देखा वे गांव आज उजड़ गये हैं। बंधुजी को गांव से इतना प्यार रहा है कि वे साल में दो बार छुट्टियों में अपने गांव जाते थे और गांव को परीलोक कहकर पुकारते। वे देश के गांवों को प्रकृति का मंदिर और भातृत्व का गढ़ कहते हैं। आज उनके गांव के संगी साथी बिछड़ गये हैं, नई पीढ़ी ने शहरों का रुख कर लिया है और प्रकृति का कोई मनमोहक दृश्य अब गांवों में नजर नहीं आता है। बंधुजी का परीलोक अब भूतलोक में बदल गया है। देश के सारे गांवों की यही दारुण कहानी है। इसलिए बंधुजी का दुख मुझे पूरे भारतीय जनपद का दुख लगता है। ❑

बंधुजी ने विवाह नहीं किया और वे सच्चे अर्थों में एक साधक का जीवन जी रहे हैं। ईश्वर में उनकी अगाध श्रद्धा है और उन्हें यह सुख और संतोष है कि ईश्वर ने जो काम उन्हें सौंपा, उसे उन्होंने पूजा की तरह समर्पण भाव से पूरा किया।

रामद्वारा गली, बागर चौक, जोधपुर



मनीष शर्मा

डेविड का नीलबाग

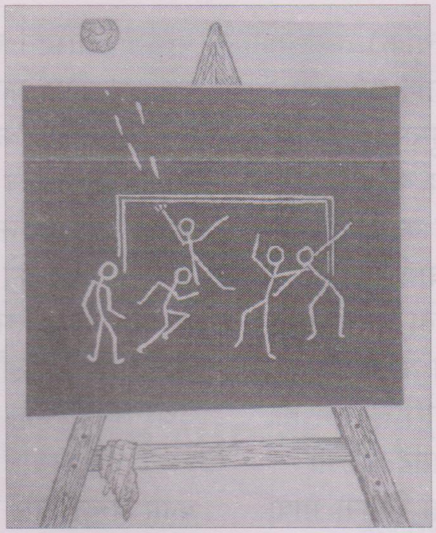
आंध्र और कर्नाटक की सीमा रेखा पर डेविड 'नीलबाग' नाम का एक स्कूल चलाते थे। उनसे मिलना, उनका परिचय पाना और उनके शिक्षा चिंतन पर चर्चा करना एक विलक्षण अनुभव हुआ करता था। डेविड एक ग्रामीण आदिवासी की तरह कन्नड़ भी बोलते थे, तेलुगु भी। लेकिन साथ ही हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत भी। संस्कृत में भी वे इतने पारंगत थे कि जमीन पर बैठकर, पालथी मारकर एक सांस में मंदाक्रान्ता छन्द की शास्त्रीय लय में कालीदास का मेघदूतम आपको सुना सकते थे। उनके स्कूल में शिक्षण का मूल माध्यम तो कन्नड़ था मगर पांच भाषाओं का एक साथ वहां अभ्यास होता था। डेविड अंग्रेज थे मगर कर्नाटक के ग्रामीण समाज को और आदिवासी अंचल की वन संपदा को वे खूब जानते थे। प्रस्तुत है डेविड के नीलबाग का एक परिचय मनीष शर्मा की कलम से। सं.❑

नीलबाग बच्चों के लिये सबसे रोचक जगह थी। बच्चे स्कूल शुरू होने से एक घंटा पहले ही स्कूल में आकर अपना डेरा जमा देते थे और शाम को स्कूल खत्म होने के बाद भी बच्चे घर नहीं जाते थे। जब रात काफी हो जाती थी तो डेविड उन्हें प्यार से डांटते थे, **'तुमने दिन भर मेरा भेजा खाया है अब तो कमबख्तों मुझे चैन की सांस लेने दो।'** उसके बाद वे उन्हें रात के अंधेरे में पॉइड-पाईपर की तरह गाना गाते हुए बच्चों को गांवं तक छोड़ आते थे।

डेविड ऑसबरॉ जन्म से अंग्रेज, वर्ण से भारतीय और मिजाज से विश्व नागरिक थे। दूसरे विश्वयुद्ध के अंतिम दौर में डेविड, रॉयल ऍयर फोर्स में भर्ती हुए और भारत भेज दिये गये। भारत के ग्रामीण जीवन, यहां के लोगों एवं संगीत के साथ उनके प्यार और लगाव का ऐसा सिलसिला शुरु हुआ जो अगस्त, 1984 उनके निधन तक चलता रहा।

युद्ध समाप्त हुआ। डेविड ने, लंदन विश्वविद्यालय के भारतीय इतिहास और संस्कृति संबंधी पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। उन्होंने भारत लौटने के अपने उद्देश्य को सामने रखते हुए संस्कृत, हिन्दी और उर्दू का अध्ययन किया। शिक्षक होने की प्रबल इच्छा के चलते वे जे. कृष्णमूर्ति द्वारा स्थापित ऋषि वैली स्कूल आ गये। उसके कुछ साल बाद उन्होंने नीलगिरी के, ब्लू माउंटेन स्कूल में भी शिक्षण कार्य किया। तत्पश्चात वे ब्रिटिश काउंसिल से जुड़े और भारत में अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाने के कार्यक्रम में अपना योगदान करने लगे। उन्होंने भारतीय बच्चों की जरूरतों के अनुरूप पुस्तकों और कार्य पुस्तिकाओं की योजना तैयार की। उन्होंने अपने सरल और विनोदी स्वभाव से जो चित्रांकन अपनी पुस्तकों में किया। उसके कारण वे बच्चों को बहुत ही आकर्षक लगती थीं। डेविड को अगली पोस्टिंग के लिए ब्रिटिश काउंसिल ने भारत छोड़ने को कहा तो उन्होंने वालिंटरी

रिटायरमेंट ले लेना ही बेहतर समझा। उन्होंने कर्नाटक के कोलार जिले में आठ एकड़ जमीन खरीदी और वहां अपने **नीलबाग** के सपने को ठोस रूप देना शुरू किया।

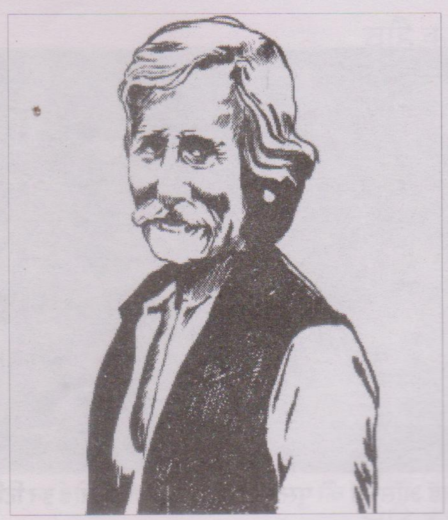


भारतीय ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखकर डेविड की अपनी देखरेख में ग्रामीणों और बच्चों की मदद से नीलबाग स्कूल तैयार हुआ। नील बाग की कल्पना डेविड के अध्ययन, अवलोकन एवं शिक्षण विचार के कारण मूर्त रूप ले पाई।

डेविड बच्चों को एक अलग ढंग से देखते हैं। वे मानते थे कि शिक्षक का काम पढ़ाना नहीं बल्कि ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें प्रत्येक बच्चा अपने स्तर पर अपनी गति से चीजों को सीख सके। बच्चों को पढ़ाना नहीं अपितु उन्हें सीखने की प्रक्रिया में शामिल करना चाहिये। मूल बात है बच्चों में सीखने की ललक पैदा करना न कि उन्हें प्रतिस्पर्धा, अंक, ग्रेड, बिल्ले या ईनाम की दौड़ में धकेलना। उन्हें लगता था कि जब बच्चे अपनी कोशिश में सफल होते हैं तो वही उनके लिये सबसे बड़ा प्रोत्साहन होता है।

वे मानते थे कि स्कूलों का पाठ्यक्रम बहुत दोषपूर्ण है। बच्चे जब अपनी रचनात्मक ऊर्जा के चरम पर होते हैं, बारह-तेरह साल की उस उम्र में, परीक्षा के दबाव में उन्हें रचनात्मकता के तमाम रास्तों को बंद करना पड़ता है। क्योंकि परीक्षा और अंकों को अनिवार्य माना जाता है। इसीलिये नील बाग में कोई परीक्षा नहीं ली जाती थी। अधिकांश सीखने का सामान भी बच्चों और शिक्षकों द्वारा ही मिलकर बनाया जाता था। पहली कक्षा से दसवीं कक्षा के बच्चे एक साथ ही पढ़ते थे। दूसरे शब्दों में कहें तो नीलबाग में वर्टिकल ग्रुपिंग का सिद्धान्त अपनाया जाता था। उनका मानना था कि जब एक ही समूह में सभी उम्र के बच्चों को शामिल किया जाता है तो उनमें एक-दूसरे से सीखने की प्रवृत्ति पनपती है और उनके बीच प्रतिस्पर्धा कम रहती है। उनका यह भी मानना था कि समर्थ बनने की इच्छा रखना और कक्षा में दूसरों से बेहतर होने की इच्छा रखना, दो अलग-अलग बातें हैं और वे बालक को समर्थ बनाने की इच्छा पर यकीन करते थे। क्लास में कोई लेक्चर नहीं होता था।

बच्चे भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने स्तर की किताबें चुनकर अपनी रफ्तार से पढ़ते थे। किसी पुस्तक के समाप्त होने पर वे शेल्फ से उसी विषय की अगली किताब उठाकर उस पर काम करते थे। कक्षा में सीखने का काम वैसे ही होता था, जैसे परिवार में बड़े बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों को सिखाते हैं। यहां कोई बच्चा एक समय पर तीसरी की तेलगु, आठवीं की गणित और छठी की अंग्रेजी पढ़ सकता था। यह स्कूल अनूठा इसलिये भी था कि यहां पढ़ने वाले गांव के बच्चे पांच भाषाएं जानते थे- कन्नड़, तेलगु, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी। ये बच्चे दुनिया की 10 भाषाओं में 150 गाने गाते थे। बच्चों की अभिव्यक्ति और आत्म-विश्वास दोनों ही देखने के काबिल था।



डेविड मानते थे कि हमारी शिक्षा सुविधाविहीन तथा सुविधा संपन्न बच्चों के लिये एक समान अवसर उपलब्ध कराने वाली हो। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि मौजूदा पाठ्यक्रम बहुसंख्यक बालकों के लिये बेहद अजनबी, अप्रासंगिक एवं अनुपयुक्त है। इनमें जीवन कहीं भी प्रतिबिम्बित नहीं होता है। नील बाग के पाठ्यक्रम में बालक-बालिकाओं को संगीत सिखाना, मिट्टी का काम करना, कुम्हार के चॉक पर बर्तन बनाना, बढ़ईगिरी का काम करना और वस्तुएं

बनाना, कशीदा काढ़ना व क्रेयान (रंगीन चॉक) तथा पानी के रंगों से चित्र बनाना सिखाया जाना, आदि प्रमुख थे। यह लिंगभेद विहीन पाठ्यक्रम का, एक सुन्दर नमूना था। इसने मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच की दूरी को भी मिटाने का काम किया। क्योंकि स्कूल की कार्य योजना में हस्तशिल्प को बहुत महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थान दिया जाता था। हाथ से काम करना, उसमें दक्षता व अचूक सूक्ष्मता लाना, एक बार माटी हाथ में लेने के बाद एक कलात्मक वस्तु तैयार करने की लगन, आरी हाथ में हो तो सफाई के साथ लकड़ी को काटना, आदि को भी पाठ्यक्रम में उतना ही महत्व दिया गया था जितना भाषा या गणित को।

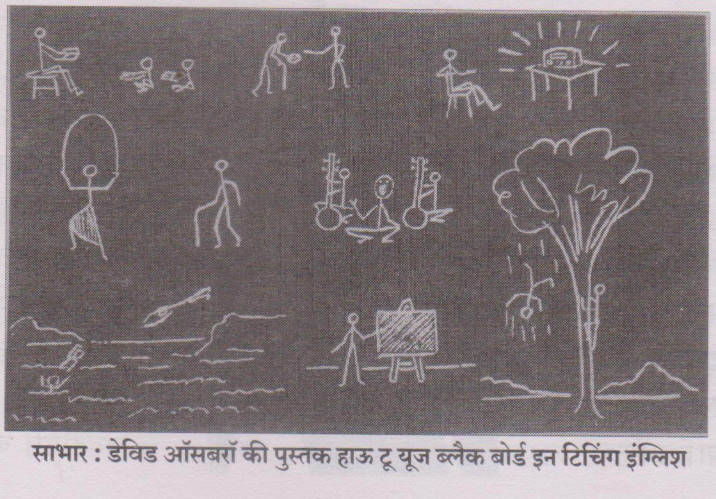
यहां प्रतिदिन सुबह एक घंटा संगीत होता था जिसमें सभी बच्चे साथ होते थे। बच्चे अच्छा गा सकें इसके लिये उनका अच्छा श्रोता होना भी उतना ही जरूरी है, ऐसी डेविड की स्पष्ट मान्यता थी। यहां बच्चे संगीत जानने वाले हर आगन्तुक से एक नया गाना गाने का अनुरोध करते और अपना गीतों का संग्रह बढ़ाते चलते। बच्चे अक्सर विभिन्न भाषाओं में भी कविताएं, लघु-नाटिकाएं एवं संवाद पढ़ते नजर आते थे। डेविड का मानना था कि अन्तर्दृष्टि को पैनी करने और बच्चों को संवेदनशील बनाने के लिये ये जरूरी है। इसका नतीजा यह हुआ कि बच्चे अलग-अलग भाषाओं में अपनी मौलिक रचनायें रचने लगे। रंगमंच से जुड़ी गतिविधियां भी पाठ्यक्रम का हिस्सा थीं। साल में एक या दो बार बच्चे शेक्सपीयर के किसी नाटक के, किसी एक दृश्य का मंचन करते। नाटक की वेशभूषा तथा अन्य तमाम सामग्री खुद ही तैयार करते। मंच पर, हाथों से, टार्च द्वारा प्रकाश व्यवस्था की जाती, जिसका संचालन बच्चे आसपास के पेड़ों पर बैठकर करते। यहां तक की डेविड की पुरानी आस्टिन कार की हैड लाईट भी कई बार मंच को प्रकाशित करने के काम आती थी।

डेविड के नीलबाग में शिक्षण का केन्द्रीय भाव था शिक्षा को केवल दिमाग में होने वाली प्रक्रिया नहीं मानकर पूरे व्यक्तित्व का निर्माण करना। यह तभी संभव है जबकि बच्चों को अपने शिक्षकों तथा सहपाठियों के स्नेह के बल पर आत्म-सम्मान को विकसित करने का अवसर मिले। शिक्षक और सीखने वाले के बीच ऐसा विश्वास तथा समझ आज परिवारों में भी मिलना मुश्किल है

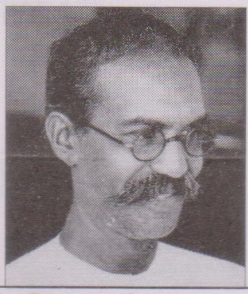
नीलबाग में अनुशासन कोई समस्या नहीं थी। काम बच्चों और शिक्षकों में बंटे होते थे। वे बारी-बारी से झाड़-पोंछ, धुलाई, पेंट, मरम्मत, ब्लैक-बोर्ड रंगना आदि काम करते नजर आते थे। कुल मिलाकर वहां कोई काम नीचा न था, न कम महत्वपूर्ण , इसलिए न स्कूल का कोई पीरियड उबाऊ था और न कोई पाठ अनुपयोगी। जो कुछ भी किया जाता वह पूरी लगन और बेहतरीन ढंग से किया जाता।

डेविड अपने सपने के नीलबाग को शायद इसलिए चला पाए क्योंकि वे धन के लिए किसी पर मुहताज नहीं थे। विदेशी एड-ऐजेंसियों से वो दूर थे। डेविड और उनके पुत्र निकोलस ने मिलकर करीब सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं जिनमें से अधिकांश को, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस और ऑरियेंट लौंगमैन ने छापा है। इन पुस्तकों पर उन्हें भारी मात्रा में सलाना रायल्टी मिलती थी और उसी से स्कूल का अधिकांश खर्च चलता था।

1984 में उनकी मृत्यु के बाद नीलबाग की आत्मा भी धाराशायी हो गयी। लेकिन इस प्रयोग ने एक बात साफ सिद्ध कर दी- गांव के बच्चों में भी अद्‌भुत प्रतिभा है। उन्हें अगर सही माहौल मिले तो वे सीखने में दुनिया में किसी से कम नहीं है। ❑



साभार : डेविड ऑसबरॉ की पुस्तक हाऊ टू यूज ब्लैक बोर्ड इन टिचिंग इंग्लिश



गिजुभाई बधेका

हरिजन बालकों से-

घर हमारा साफ हो-
चाहे घर पतरों का हो,
चाहे घर घास-फूस का हो,
चाहे घर पर चिथड़ों का छप्पर हो,
चाहे घर में फर्श न हो,
चाहे घर का साज-सामान पुराना हो,
चाहे घर अब गिरूं, तब गिरूं हो रहा हो,
पर घर हमारा साफ हो, सुथरा हो।
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं।
आंगन हमारा साफ हो-
आंगन में तुलसी क्यारा हो,
क्यारे में घी का दीया हो,
आंगन लिपा-पुता हो।
चाहे आंगन छोटा हो,
चाहे उसमें गुलाब की क्यारियां न हों,
चाहे उसमें हौज और फव्वारे न हों,
पर आंगन हमारा साफ हो, सुथरा हो।
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं।
हमारे आंगन में श्री हरि बसते हैं।
शरीर हमारा साफ हो-
हम रोज उठकर दांत साफ करें,
रोज घर का काम-काज करें,
रोज नहायें, रोज कपड़े धोयें,
बढ़े हुए नाखून निकाल डालें,
सिर पर रूखे-उलझे बालों की जटा न बढ़ायें।
चाहे हमें ब्रुश न मिले, कंघा न मिले,
चाहे हमें साबुन न मिले,
चाहे हमें तैल-फुलैल भी न मिले,
पर हम अपना शरीर साफ रक्खें, सुथरा रक्खें।
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं।
हमारे शरीर में श्री हरि रहते हैं।
कपड़े हमारे साफ हों-
उनमें थोड़ा भी मैल न रहे,
उनमें एक भी जूं न रहे,
उन पर एक भी दाग न रहे,
उनमें थोड़ी भी बदबू न रहे।
चाहे कपड़ों में बटन न हों,
चाहे कपड़े फटे-पुराने हों,
चाहे कपड़े मोटे-खुरदरे हों,
पर कपड़े हमारे साफ हों, सुथरे हों।
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं।
हमारे कपड़ों में श्री हरि बसते हैं।
हम मरे ढोर का मांस न खायें-
चाहे हमारे बाप-दादा खाते रहे हों,
चाहे हमें घिन न आती हो,
चाहे हमारे पैसे बचते हों,

चाहे हमें वह बहुत भाता हो।
पर हम न ढोर मरें, न मरे ढोर का मांस खायें।
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं।
दूसरे लोग चाहे खायें,
चाहे ब्राह्मण ही क्यों न खायें,
चाहे बनिये ही क्यों न खायें,
जो खाते हों, वे भले खायें,
और जो न खाते हों, वे भी चाहे खायें,
चाहे चुराकर खायें, लुक-छिपकर खायें,
चाहे हिंसा करके खायें,
पर हम मांस-मिट्टी खाने से बचें।
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं।
मन हमारे निर्मल हों-
हम किसी का बुरा न चाहें,
बुरों का भी भला चाहें,
किसी को गाली न दें,
जो दे, उसे माफ कर दें,
चाहे लोग हमें दुत्कारें,
चाहे लोग हमें धिक्कारें,
पर हम अपना मन निर्मल रक्खें।
क्योंकि हम हरिजन हैं।
हमारे मन में श्री हरि बिराजते हैं।
हम अपनी देह को पवित्र रक्खें
शराब से देह भ्रष्ट होती है।
मांस-मिट्टी से देह भ्रष्ट होती है।
चुराकर खाये गये अन्न से भी देह भ्रष्ट होती है।
दुराचार से देह भ्रष्ट होती है।
अफीम से भी देह भ्रष्ट होती है।
हर तरह की हिंसा से देह भ्रष्ट होती है।
भीख में मिले अन्न से भी देह भ्रष्ट होती है।
देह हमारी पवित्र हो-
क्योंकि हम हरिजन कहलाते हैं,
हमारी देह में श्री हरि रहते हैं।
हमारे मुंह से सच बात ही निकले-
हम छल-कपट से दूर रहें,
हम झूठ और पाखण्ड से बचें।
चाहे सब झूठ बोलें,
चाहे सब छल करें,
चाहे सब कपट से काम लें,
चाहे सब पाखण्डी बनें,
चाहे सारी दुनिया उलटी चले,
पर हम अपनी जबान से सच ही बोलें;
क्योंकि हम हरिजन हैं।
हमारी जीभ पर श्री हरि बसते हैं।
हृदय हमारा मंदिर बने
हमारे मंदिर में नरसिंह मेहता बिराजें,
हमारे मंदिर में कबीर और रैदास बिराजें,
हमारे हृदय में एकनाथ और तुकाराम बिराजें।
दूसरे मंदिर चाहे बंद हों,
दूसरे मंदिरों में चाहे हमें धक्के मिलें,
दूसरे मंदिरों में चाहे हम दुत्कारे जायें।
पर हृदय हमारा मंदिर बने।
हमारे हृदय-मंदिर में श्री भगवान बिराजें। ❑





नीलम गुप्ता

सेरड़ी, शिक्षा व ग्रामशिल्पी

डांग जिले की सुबीर तहसील के तालुका प्राथमिक शिक्षण अधिकारी रमेश गामित का कहना था–'ग्रामशिल्पी गौतम चौधरी के काम से हमें बहुत मदद मिली है। सेरड़ी के समय कम से कम ४० प्रतिशत बच्चे अपने माता पिता के साथ गन्ना काटने या चीनी मिलों में काम करने के लिए शहर चले जाते हैं और काम खत्म होने पर छह महीने बाद लौट कर गांव आते हैं। पर उनमें से सभी दुबारा स्कूल नहीं आते। और जो आते हैं वे पढ़ाई में काफी पीछे रह जाने के कारण आगे की पढ़ाई समझ ही नहीं पाते। क्योंकि हर किसी को आगे की कक्षा में चढ़ा देने का नियम है इसलिए फिर वे अगली क्लास की पढ़ाई के योग्य हों या न हों, परीक्षा में फेल होने के बावजूद उन्हें अगली क्लास में चढ़ा देना हमारी मजबूरी होती है। दो तीन साल के भीतर ही ऐसे बच्चे पढ़ाई छोड़ देते हैं।'

वे आगे कहते हैं –'सर्व शिक्षा अभियान के तहत खोले गए सरकारी सीजनल हॉस्टल मात्र ७३ हैं जिनमें १७३ बच्चे ही रखे जा सकते थे। जबकि पूरी तहसील में करीब छह हजार स्कूली बच्चे हैं। बाकी विस्थापित होने वाले बच्चों की पढ़ाई नहीं हो पाती थी। पर गौतम भाई ने ऐसे छात्रों के लिए आठ सीजनल हॉस्टल चलाए। इन पर संख्या की सीमा नहीं है इसलिए एक–एक हॉस्टल में सौ सौ बच्चों को भी रखा। उनके खाने पीने रहने का सारा प्रबंध किया। ये काकशाला गांव में २०१४ से एक स्थाई छात्रालय भी चला रहे हैं। उसमें करीब ६० बच्चे रहते हैं। काकशाला और आसपास के गांवों के ये वे बच्चे हैं जिनके मां–बाप को उनकी पढ़ाई से कोई वास्ता नहीं। वे तो उन्हें पशु चराने के लिए जंगल में भेज देते थे। सेरड़ी के समय उन्हें साथ ले शहर चले जाते थे। उन सभी को इन्होंने हॉस्टल में रखा और आज वे सभी पढ़ाई कर रहे हैं। घने जंगल से घिरे दूरस्थ गिरमाल जैसे इलाके से भी बच्चों को निकाल कर ये अपने छात्रालय में ले आए। सरकार यह काम कभी नहीं कर पाई थी। गिरमाल में स्कूल पांचवी तक ही है। वहां से छठी कक्षा की पढ़ाई के लिए वे बच्चों को काकशाला गांव में अपने छात्रालय में रखते हैं और वहां के स्कूल में आठवीं–दसवीं तक पढ़ाते हैं। अगर अपने छात्रालय में सबके लिए जगह न हो तो उन्हें बारडोली, नवसारी, तापी, करूठा आदि में चल रहे छात्रालयों में भेज देते हैं। गौतम भाई की कोशिशों का ही नतीजा है कि आज यहां के बच्चे प्रोफेशनल पढ़ाई के लिए जिले से बाहर निकल मुबंई तक जा रहे हैं।'

ग्रामशिल्पी के रूप में जो काम गौतम चौधरी ने दक्षिण गुजरात के डांग जिले में किया वही काम अशोक चौधरी सूरत जिले की मांडवी तहसील और जेत्सी राठौड़ तापी जिले की सोनगढ़ तहसील के गांवों में कर रहे हैं। ये सभी आदिवासी इलाके हैं जहां मिशनरी प्रभाव के कारण स्कूल तो हैं। सरकारी, गैर –सरकारी और गांधीवादी संस्थाएं भी काम कर रही हैं फिर भी लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता न के बराबर ही है। खेती और मजदूरी में लगे रहने के कारण माता–पिता व बच्चों के बीच संपर्क

बहुत ही कम रह पाता है। गांव में बच्चे या तो पशु चराने जंगल में जाते हैं और पशु न भी हों तो भी स्कूल जाने की बजाए जंगल में घूमना व खेलना उन्हें अधिक भाता है। स्कूल तो वे मिड डे मील के लिए ही अधिक जाते हैं। जंगल में पेट भर गया तो वह भी नहीं। यही कारण है कि कई कई दिन तक बच्चे स्कूल आते ही नहीं। अगर मां बाप के साथ मजदूरी के लिए गांव से बाहर चले गए तब तो कई महीनों की गई। अपने अपने क्षेत्र में काम कर रहे ये ग्रामशिल्पी गांवों में आम जन-जीवन की जरूरतों के मद्देनजर रोजगारी, खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सामाजिक व आर्थिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। शिक्षा इनमें से पहली प्राथमिकता रहती है। यही कारण है कि इन सभी ग्रामशिल्पियों के काम की शुरुआत गांवों में बच्चों व स्कूलों से हुई। तीनों ने गांवों से अपना संपर्क बच्चों के माध्यम से ही साधा और सबसे पहले स्कूल के परिसर में रह कर उनकी व अध्यापकों की वृत्तियों को समझा। स्कूल में ये बच्चों को अतिरिक्त समय में पढ़ाते। गांव वालों का भरोसा जीत लेने के बाद तो गांव वाले इनकी बात को टालते ही नहीं थे। खासकर बच्चों के संदर्भ में। नतीजा, जो बच्चे कई दिन तक स्कूल से गायब रहते, अध्यापक उनके नाम इन्हें दे देते और ये उनके परिवार से संपर्क कर बच्चों को दुबारा स्कूल ले आते। इतना ही नही, उन्हें पढ़ाते भी ताकि जो पढ़ाई उनकी छूट गई है, वह पूरी हो जाए। करूठा गांव की प्राथमिक शाला के प्राचार्य लालजी वसावा का कहना था-'आज इस स्कूल में पांच टीचर्स हैं तो ग्रामशिल्पी अशोक चौधरी की वजह से। क्योंकि इनकी वजह से हमारे





स्कूल में बच्चों की संख्या बढ़ी। पहले तो यहां एक ही टीचर था। वह भी कभी आता, कभी नहीं आता क्योंकि बच्चे होते ही नहीं थे। अब तो यह स्कूल आठवीं तक हो गया है। इसे क्रमोन्नत करवाने में भी अशोक का हाथ रहा।'

अशोक का कहना था-मेरे छात्रालय के बच्चों को पांचवी के बाद पांच किमी. पैदल चलकर दूसरे गांव में स्कूल जाना पड़ता था। इस पूरे क्षेत्र में बारिश बहुत ज्यादा होती है इसलिए बारिश के मौसम में यह गांव बाकी क्षेत्र से पूरी तरह कट जाता है। ऐसे में हमारे बच्चों की पढ़ाई का काफी हर्जा होता था। इसलिए जब हमारें छात्रालय में इतने बच्चे हो गए कि इस स्कूल को आठवीं तक करवाया जा सके तो हमने इसे गुजरात सरकार से क्रमोन्नत करवाया। हमारे छात्रालय में दसवीं तक के बच्चे हैं। हमारी कोशिश रहेगी कि अगले कुछ साल बाद इसे दसवीं तक करवा दिया जाए।

जेत्सी राठौड़ ने अपना कोई छात्रालय नहीं खोला पर वे बच्चों को स्कूल में जाकर इस तरह से पढ़ाते हैं कि शिक्षा के प्रति उनकी रुचि बढ़ी है और वे स्कूल जाना पसंद करने लगे हैं। जब से उनके बच्चे नवोदय विद्यालय व एकलव्य स्कूल की प्रतियोगी परीक्षा में पास होने लगे हैं, गांव में सभी माता-पिता भी अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति सचेत हो गए हैं। अब वे अपने बच्चों को

काम पर साथ ले जाने की बजाए स्कूल में जाने पर ज्यादा जोर देते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने एक पुस्तकालय के लिए जेत्सी भाई को जगह भी दे दी है। हर छुट्टी वाले दिन अपनी रुचि की किताबे पढ़ते और खेल खेलते हैं। भटवाड़ा गांव के प्राथमिक स्कूल के प्रिंसीपल दानसिंह चौधरी का कहना था कि-'बच्चों में पुस्तक की प्यास जगी है। अब वे स्कूल में भी किताबें पढ़ने लगे हैं। वाचन व लेखन सुधरा है। जेत्सी भाई जो खेल करवाते हैं तो उनमें लिखना भी होता है। जैसे कि एक मिनट में कौन कितने शब्द लिखता है। इससे लेखन, तत्परता व याददाश्त तीनों ही बढ़ती हैं। बच्चों में स्थिरता भी आई है।'

वे आगे कहते हैं-'यहां का अदिवासी मुख्यरूप से प्रकृति व खेती- किसानी से जुड़ा हुआ है। जेत्सी छुट्टी के दिन बच्चों को जंगल में ले जाकर उससे पहचान तो कराते ही हैं इन्होंने स्कूल में बच्चों को एक बीजों की किट भी दी। इसमें किचन गार्डन के लिए सब्जियों के बीज थे। उन्हें एक डैमो दिया। बीज बोने से लेकर फल आने तक का। इसके बाद उन्हें कहा गया कि वे खुद बीज को पहचानेंगे। उन्हें बोएंगे। बड़ा करेंगे और फिर पक जाने के बाद जो फल बीज बनेगा उसे इकट्ठा कर थैली में पैक कर उनके पास वापस लाएंगे। जंगल में ११ प्रकार की वाल पापड़ी होती है। सभी किस्मों के बीज वहां से भी बच्चों को साथ ले जाकर इकट्ठे किए। फिर उन सभी बीजों को गांव में दुबारा उगाने के लिए बांटा गया। अब देखना यह भी था कि उन बीजों से किस्म की गुणवत्ता में कोई बढ़ोतरी हुई या नहीं। यह कृषि व रोजगार के नजरिए से बच्चों में कौशल संवर्धन का बहुत ही सफल प्रयोग था।'

महात्मा गांधी ने १९२० में गुजरात विद्यापीठ की अमदाबाद में स्थापना यह सोचकर की थी कि दूरदराज के गांवों के गरीब बच्चे इसमें शिक्षा लेकर अपना जीवन यापन कर सकेंगे। गांवों में शिक्षा की रोशनी फैलाएंगे। गौतम, अशोक और जेत्सी तीनों ही गुजरात विद्यापीठ के स्नातकोत्तर हैं और अपनी ल्यूकरेटिव जॉब को छोड़कर बतौर ग्रामशिल्पी गुजरात के दूर-दराज के वंचित गांवों को अपना घर बना जीवन-शिक्षा की रोशनी फैलाने में जुटे हुए हैं। ❑

कविता



नैनिका नागर घोष

ऐसा हो नववर्ष

संगीत की बहती नदी हो
वृक्षों की टहनी फूलों से लदी हो
हर कोंपल, हर कली पर छाया
वसन्त हो
धरती पर जीवन अनन्त हो।

नव निष्ठा नव संकल्प हो
अडिग भरोसा, धीर महान हो
स्वयं की इन्द्रियों पर नियंत्रण
और हर कर्म में निःस्वार्थ भाव हो।

नव विचार हो, जिनमें संस्कार हो,
जीवन में सात्विक आहार और
विहार हो
केवल रेत और मिट्टी के ही नहीं
दिलों में भी घर बनाने का प्रयास हो।

नव वर्ष की आप सभी को बहुत
बहुत शुभकामनाएं। ❑

बाल विवाह : राजस्थान गठबंधन की बैठक

गर्ल्स नॉट ब्राइड्स के राजस्थान समूह की बैठक १७ दिसम्बर, २०१९ को संस्थान के प्रौढ़ शिक्षण समिति परिसर में आयोजित की गयी। इस बैठक में राजस्थान के २० स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। बैठक के मुख्य उद्देश्य थे : पूर्व में किये गए कार्यों की समीक्षा करना, नए वर्ष के कार्यक्रम तैयार करना और वैश्विक बैठक के लिये तैयारी करना। यह बैठक चार सत्रों में रखी गयी।

सत्र एक

सत्र की शुरुआत में गर्ल्स नॉट ब्राइड राजस्थान के समन्वयक अरविन्द ओझा ने समूह के उद्देश्यों को साझा किया एवं सभी सदस्यों को चर्चा करने हेतु आमंत्रित किया। निशांत अरुण द्वारा विगत वर्ष में की गयी गतिविधियों की जानकारी पॉवर पॉइंट द्वारा दी गयी। अरविन्द ओझा ने विगत वर्ष में हुई प्रगति की जानकारी दी। उन्होंने कहा कि राजस्थान उच्च न्यायालय के जस्टिस संदीप मेहता ने भी हमारे संगठन के कार्यों की सराहना की है।

संगठन की उपाध्यक्ष इंदिरा पंचोली ने मीडिया को धन्यवाद देते हुए कहा कि हम एक अच्छा कार्य कर रहे हैं और हम सब को एक साथ आ कर अपने कार्य को बढ़ाना चाहिये।

गर्ल्स नॉट ब्राइड्स ग्लोबल की शिप्रा झा ने बात को आगे बढ़ाते हुए बताया कि विश्व में कई ऐसे देश हैं जहां बाल विवाह को रोकने के लिए कोई क़ानून नहीं है और ऐसे में बाल विवाह पर सटीक आंकड़े जुटा पाना मुश्किल है। भारत में बाल विवाह रोकथाम पर क़ानून है लेकिन उसका उचित इस्तेमाल नहीं हो पा रहा। उन्होंने कहा कि बाल विवाह एक कानूनी अपराध के साथ एक सामाजिक बुराई भी है, ये सदियों से चली आ रही एक कुप्रथा है जिसके अंत के लिये समाज के प्रत्येक वर्ग को आगे आना होगा। शिप्रा झा ने बताया कि राजस्थान के बाद अब उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल भी गर्ल्स नॉट ब्राइड्स के साथी बनने जा रहे हैं।

गर्ल्स नॉट ब्राइड्स की ही दिव्या मुकुंद ने कहा कि हमें युवा वर्ग को ध्यान में रखते हुए अपनी कार्य योजना बनानी होगी। युवाओं की बात को सुनना आवश्यक है। दिव्या ने राजस्थान संगठन की तारीफ करते हुए कहा कि यहां सभी गैर-सरकारी संस्थान अच्छा काम कर रहे हैं। गर्ल्स नॉट ब्राइड्स राजस्थान को यूनिसेफ के स्टेट एक्शन प्लान को देखना चाहिये और उसे क्रियान्वित करने में मदद करनी चाहिये।

सत्र दो

द्वितीय सत्र में सभी सदस्यों को तीन समूहों में बांटा गया एवं उन्हें एक विषय पर चर्चा करने को कहा गया। समूह एक का विषय 'युवाओं की भागीदारी', समूह दो का विषय 'पैरवी' एवं समूह तीन का विषय 'नजरिया' रहा। तीनों समूह ने अपनी-अपनी प्रस्तुतियां दीं।

सत्र तीन

तीसरे सत्र में विभिन्न प्रतिभागियों ने अपने विचार रखे। एक्शन ऐड की सीओन ने बताया कि उनकी संस्था राजस्थान के दस जिलों में कार्यरत है। उनकी संस्था बच्चों के कौशल विकास पर कार्य करती है।

पापुलेशन फाउंडेशन ऑफ़ इंडिया की पारुल ने बताया कि उनकी संस्था राजस्थान के चार जिलों में कार्य करती है जिसमें बालिकाओं की शिक्षा उनकी प्राथमिकता है।

क्राई संस्था के धर्मवीर ने कहा कि युवाओं को जोड़ना एवं उनकी बात को सुनना बेहद आवश्यक है। युवा देश का भविष्य हैं एवं उनके द्वारा ही समाज में परिवर्तन संभव है।

प्लान इंडिया की नम्रता ने कहा कि बाल विवाह एक गंभीर समस्या है और इसके निराकरण के लिये सभी को आगे आना होगा।

सारदा संस्था के ब्रजमोहन ने कहा कि कन्यादान एक प्रचलित रस्म है। जिसमें कन्या का पिता अपनी बेटी का दान करता है। ऐसा माना जाता है कि १४ वर्ष की आयु प्राप्त हो जाने के बाद लड़की कन्या नहीं रहती

इसलिए चौदह वर्ष की आयु से पहले उसका दान किया जाना चाहिए।

राजसमन्द जन विकास संस्थान की शकुंतला पामेचा ने बालिकाओं द्वारा स्कूल छोड़ने का मुद्दा उठाया। उनका कहना था कि अधिकतर बालिकाएं आठवीं कक्षा के बाद स्कूल छोड़ देती हैं और उनकी शादी कर दी जाती है । यदि बालिकाओं को उच्च अध्ययन की सुविधा मिले और वो स्नातक तक की पढाई कर सकें तो बाल विवाह में कमी आ सकती है।

सत्र चार

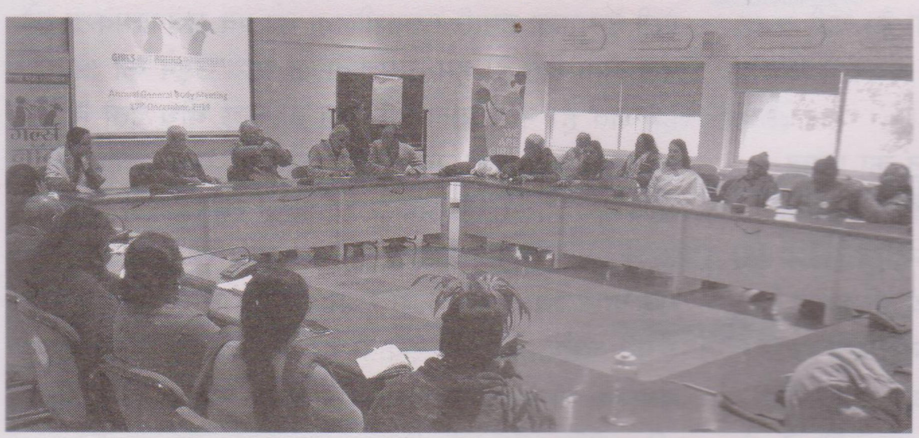
बैठक के चौथे सत्र में हिंसा विषय पर जाने माने लेखक व चिन्तक नंदकिशोर आचार्य का व्याख्यान आयोजित किया गया।

हिंसा के विषय पर बोलते हुए नंदकिशोर आचार्य ने कहा कि हिंसा को समझने के लिये पहले ये जानना आवश्यक है कि हिंसा क्या है ? हिंसा के कई रूप होते है। सामान्यत: मार-पीट को ही हिंसा समझा जाता है, किन्तु हिंसा कुछ और भी है। मार-पीट दरअसल हिंसा का प्रत्यक्ष रूप है और इसके अलावा हिंसा का एक अप्रत्यक्ष रूप भी होता है। हिंसा के इस अप्रत्यक्ष रूप को समझना जरूरी है। हर वो चीज जो आवश्यक नहीं है या मनुष्य आत्मसिद्धि में बाधा बनती है, हिंसा है। अपने मनुष्यत्व को जानना आत्मसिद्धि है और जो इसमें रुकावट पैदा करे वो हिंसा है। जैन धर्म में भाव-हिंसा का उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार मन में दुश्विचार आना भी हिंसा है।

अपनी बात को आगे बढ़ते हुए आचार्यजी ने कहा कि हिंसा दो प्रकार की होती है। एक है व्यवस्थापिका हिंसा और दूसरी सांस्कृतिक हिंसा। किसी व्यवस्था में मौजूद हिंसा को हम व्यवस्थापिका हिंसा कह सकते हैं, जबकि किसी आस्था या मान्यताओं पर की गयी चोट को सांस्कृतिक हिंसा कहा जाता है।

व्यवस्थापिका हिंसा में हम कह सकते हैं कि शिक्षा जब व्यवस्था बन जाती है तो उसमें हिंसा होती है। शिक्षक और शिक्षार्थी एवं शिक्षक और सरकार के बीच हिंसा को देखा जा सकता है। हमारा सिलेबस भी हिंसा को बढ़ावा देता है। सिलेबस को शिक्षार्थी पर थोपा जाता है जो एक प्रकार की हिंसा है और सिलेबस में जो पढ़ाया जाता है उसमें भी हिंसा भरी पड़ी है। सांस्कृतिक हिंसा मान्यताओं पर की जाती है या मान्यताओं द्वारा की जाती है। कुछ बातों को हम मान लेते हैं या भूमिका बना लेते हैं। इन मान्यताओं को बनाने या मानने में चेतना और तर्क अनुपस्थित होते हैं। उदाहरण के लिये हम सब ये मानते हैं कि लड़कियां कमजोर होती हैं और उनके होने का एकमात्र उद्देश्य विवाह करना है। यद्यपि तार्किक रूप से यह सत्य नहीं है। इस प्रकार ये मान्यताएं हिंसा करती हैं।

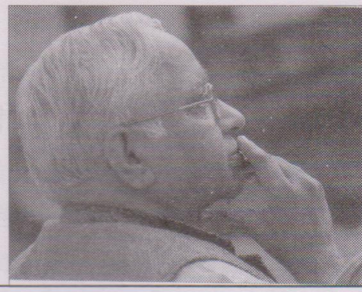
राज्य शक्ति का प्रतिरूप है और शक्ति में हिंसा निहित है। विश्वभर की संसद भी हिंसा ही करती है। संसद कानून को बदल देती है, किसी को सम्राट घोषित कर सकती है, ये भी हिंसा ही है। शक्ति की स्थापना हिंसा द्वारा ही हो सकती है। विश्व का तमाम इतिहास शक्ति स्थापना में हिंसा के प्रयोग से भरा पड़ा है। यद्यपि मनुष्य स्वभाव से हिंसक नहीं होता वरन् मनुष्य तो शांति चाहता है। इस शांतिप्रिय मनुष्य के ऊपर बाहरी दबाव पड़ता है और मनुष्य हिंसक हो जाता है।



सत्र के अंत में अरविन्द ओझा, शारदा जैन एवं राजेन्द्र बोड़ा ने भी अपने विचार रखे।

राजस्थान गठबंधन के उपाध्यक्ष योगेश वैष्णव ने बैठक के अंत में सभी को धन्यवाद दिया एवं बालिकाओं के उज्जवल भविष्य की कामना की। ❑

– डॉ. निशांत अरुण ओझा



रमेश थानवी

काल की प्रतीति और अनुभूति

नया साल आ गया है। साल के स्वागत के कई संदेशे आने लगे हैं। शुभकामनाओं और मंगलआशिष का जैसे सोता बह निकला है। जो साल गया वह भी हमारे साथ है और जो साल आ रहा है वह भी हमारे साथ जुड़ जायेगा।

इस प्रकार हम काल से घिरे हैं। निरन्तर बह रहे हैं काल के साथ। उसका कोई आदि-अंत नहीं है। इस बहाव का एक सातत्य है। इस सातत्य को शाश्वत भी कहा जा सकता है क्या ? ऐसा प्रश्न मन में उभर रहा है।

काल हमें बांधता है। मगर उस बंधन में ठहराव नहीं है। बहाव है। वह बाहर भी है और भीतर भी है। हम काल धारा में बह रहे हैं। बहाव भीतर भी है। धारा है वह। जो धारा है उसे तो बहना ही है। वही अंतर-धारा हमको स-काल बनाये रखती है। उसी की हमें प्रतीति होती है। प्रतिपल यही हमारा काल-बोध है। हम काल के साथ हैं और काल हमारे साथ है। काल हमारा सहयात्री है। इस सहयात्रा में एक जाग्रत काल हमें हमारे होने का बोध कराता है। वह काल की अनुभूति है। प्रतीति से आगे और अलग। हमारा होना ही तब काल का होना है। यही वजह है कि हम सदा काल से बंधे रहते हैं। इस बंधन में मोह है, मगर यह मोह 'सत्' नहीं है। मिथ्या है।

हमारा होना 'सत्' नहीं है। काल का प्रवाह 'सत्' है। काल के इस प्रवाह को हम प्रतिपल बाहर व भीतर देख सकते हैं। काल के इस आभ्यान्तरिक-बोध का नाम हमारा अस्तित्व है। अस्तित्व का अर्थ भी हमारे चित्त से है, चैतन्य से है। शुद्ध चैतन्य से। **चिदानन्द रूपं शिवोऽम, शिवोऽम।** यह चित्त क्या काल का वाहक है? मन में यदि ऐसा प्रश्न उठता है तो मैं सोचता हूं कि मैं तो ऐसा प्रश्न करने का अधिकारी भी नहीं हूं। न मैं ऐसा कहने का अधिकारी हूं कि चित्त ही काल का वाहक है।

चित्त को समझना होगा। अपने को जानकर चित्त को समझना होगा। जब तक हम स्वयं अपने को न जान लें, तब तक हम चित्त को नहीं समझ सकते। चित्त को समझने की कोशिश में मैं देख पा रहा हूं कि चित्त तो कण-कण में व्याप्त ऊर्जा का नाम है। आंतरिक ऊर्जा। उसी ऊर्जा में प्रवाह है। काल का प्रवाह। कण-कण की इस ऊर्जा का आधार इसका अग्नि-तत्व है। यही अग्नि-तत्व चैतन्य स्वरूप है। यह चैतन्य अपने स्वभाव से ही गतिशील है। जड़ता को यहां कोई स्थान नहीं है। निरन्तर काल के प्रवाह का बोध है। काल के इस प्रवाह को एवं इसकी गति को हम काल-चक्र के रूप में प्रतीकित करते हैं। इस गति में आकाश स्वयं और स्वत: सिमट जाता है। दूरियां घट जाती हैं। काल का बोध हमारे साथ रहता है। आकाश हमारे भीतर आ जाता है। हम व्योम में मिलकर उसकी थाह लेने को आजाद हो जाते हैं। यह आजादी और ऐसी उन्मुक्तता हमारी रचनाशीलता को एवं सृजनात्मकता को पंख लगा देती है। हम उन्मुक्तता के साथ उड़ने को आतुर हो जाते हैं। नया साल हमें ऐसा ही कुछ बोध देता है कि हम नया कुछ करें। नव-सृजन करें और काल-चक्र के साथ बंधे होकर भी अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता के साथ उड़ते फिरें। ऐसी स्वतंत्रता प्रतिपल साथ रहे और फिर एक वर्ष कुछ नया करने, नया रचने में बीत जाये। यही एक सच्ची शुभकामना बन सकती है। नव वर्ष तब **'नवगति, नवलय, तालछंद नव'** रचने का सच्चा अवसर होगा। काल की प्रतीति और अनुभूति का एक सच्चा अवसर। ❑

चित्र समाचार







जब शब्द रूप लेता है तो वह किसी
कला के माध्यम से रूप लेता है,
वह शब्द मुद्रा भी बन सकता है,
संगीत भी बन सकता है, और
कविता या शिल्प भी बन सकता है।

– गुरु प्रेरणा श्रीमाली

दिनांक १३ दिसांबर, २०१९ को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर में VB Design Studio (आर्किटेक्ट्स और इंटीरियर डिजाइनर्स), द्वारा कत्थक गुरु प्रेरणा श्रीमाली जी के साथ एक संवादात्मक सत्र 'DEPTH - Design Endeavor for Polishing Thoughts' आयोजित किया गया।



यह अंक
कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर
के सौजन्य से साभार
धन्यवाद!

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा
७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४ से प्रकाशित। संपादक - रमेश थानवी

अनौपचारिका : पृष्ठ–६८ जनवरी, २०२० रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X